त्रिकालदर्शी

(श्री जगदीश प्रसाद मण्डल के मैथिली कथा संग्रह ‘त्रिकालदर्शी’ का हिंदी अनुवाद)

त्रिकालदर्शी

मैथिली कथा संग्रह

जगदीश प्रसाद मण्डल

त्रिकालदर्शी

हिंदी अनुवाद

अच्छे लाल शास्त्री

त्रिकालदर्शी

जगदीश प्रसाद मण्डल

हिंदी अनुवाद

अच्छे लाल शास्त्री

पल्लवी प्रकाशन
बेरमा/निर्मली

TRIKALDARSHI

Hindi Translation of the Maithili Short-Story Collection Trikaldarshi

Original Author: Shri Jagdish Prasad Mandal

Hindi Translation: Shri Achhe Lal Shastri

Trikaldarshi presents, in Hindi, eight reflective Maithili short stories by Shri Jagdish Prasad Mandal, a major voice in contemporary Maithili fiction. Rooted in rural Mithila, these stories move through fields, markets, floods, household conversations, caste and community relations, labour, uncertainty, and changing social habits. Mandal observes ordinary life with ethical seriousness, quiet humour, and deep trust in lived experience.

The title suggests a vision that looks at the past, present, and future together. In these stories, superstition is tested by reason, agricultural skill meets an unstable climate, the village economy confronts market pressure, and hope repeatedly faces water, loss, and misjudgement. Yet the stories do not surrender to despair. They search for balance, responsibility, and practical wisdom within everyday struggle.

Mandal's narrative method is conversational, patient, and inward-looking. His characters are farmers, wives, neighbours, traders, elders, and companions whose speech carries the rhythm of Mithila, while their concerns speak to a wider human world. Humour, irony, and reflection arise naturally from situation and dialogue, not from decorative narration.

This translation seeks to carry the moral force, social insight, and narrative warmth of the original Maithili into clear, readable Hindi, allowing readers to experience both the local fragrance and the larger human meaning of Trikaldarshi.

Published by: Pallavi Prakashan

Tulsi Bhawan, Nehru Marg, Ward no. 06, Nirmali, District: Supaul, Bihar: 847452

First Edition: 2026

ISBN: Applied For

Price: 399/-

Copyright: © Publisher, 2026

Printed by: Manav Art (Pallavi Prakashan)

Typesetting: Dr. Umesh Mandal, umeshberma@gmail.com

Cover Design: Mrs. Poonam Mandal, Nirmali, Supaul, Bihar- 847452

Website: http://pallavipublication.blogspot.com

Email: pallavi.publication.nirmali@gmail.com

Mobile: +91 99316 54742, +91 62006 35563

Font Source: https://fonts.google.com

All rights reserved. No part of this book may be reproduced, distributed, transmitted, adapted, paraphrased, stored in a retrieval system, or processed in any form or by any means, including electronic, mechanical, digital, or artificial intelligence systems, without the prior written permission of the copyright holder or the publisher.

समर्पण

मिथिला की उस जीवित लोक-धरती को समर्पित,
जहाँ खेत, बाढ़, श्रम, हाट, परिवार, अनुभव और विवेक
के बीच मनुष्य हर दिन जीवन को फिर से गढ़ता है।

उन साधारण जनों को समर्पित,
जिनकी पीड़ा में समाज का सत्य है,
जिनकी हँसी में लोक-बुद्धि है,
और जिनकी आशा में भविष्य का दीप जलता रहता है।

अनुक्रम

भूमिका

1. भूतग्रस्त या भविष्य-सचेत
2. बाँसवारी की पीड़ा
3. गुणहीन कौन?
4. परिस्थिति से समझौता
5. जिसका चूना, उसका पुण्य
6. त्रिकालदर्शी
7. बाढ़ का बड़ा फेर
8. आशा पर पानी फिरा

भूमिका

☰

साहित्य जीवन से अलग कोई चीज नहीं है। समाज जिस समय से गुजरता है, उसके सुख-दुःख, संघर्ष, आशा, भ्रम, विश्वास और विडम्बनाएँ साहित्य में किसी न किसी रूप में आ ही जाती हैं। सच्चा लेखक वही होता है, जो जीवन को निकट से देखता है और समाज के भीतर रहकर उसकी अनुभूतियों को समझता है। श्री जगदीश प्रसाद मण्डल की कथाएँ इसी तरह के जीवनानुभव से निकली हुई कथाएँ हैं। वे मिथिला के गाँवों को बाहर से देखने वाले कथाकार नहीं, बल्कि उसी लोकजीवन के भीतर से बोलने वाले रचनाकार हैं। उनके यहाँ खेत केवल खेती की जगह नहीं, किसान के श्रम और संघर्ष का प्रतीक है। हाट केवल बाजार नहीं, गाँव-समाज की हलचल का केंद्र है। बाढ़ केवल प्राकृतिक घटना नहीं, किसान की मेहनत, आशा और भविष्य पर चोट करने वाली स्थिति है।

श्री जगदीश प्रसाद मण्डल समकालीन मैथिली साहित्य के महत्त्वपूर्ण रचनाकार हैं। उनका व्यक्तित्व भी उनकी रचनाओं की तरह सिद्धान्तनिष्ठ, कर्मठ और लोकजीवन से गहराई से जुड़ा हुआ है। वे साहित्य को केवल लेखन-कर्म नहीं, बल्कि जीवन और समाज के प्रति उत्तरदायित्व मानते हैं। नियमितता उनकी सबसे बड़ी पहचान रही है। लेखन, अध्ययन, साहित्यिक सहभागिता और सामाजिक संवाद, इन सभी क्षेत्रों में उनकी निरन्तर सक्रियता ने उन्हें मैथिली साहित्य-जगत में विशिष्ट स्थान दिया है। मैथिली साहित्य के प्रसिद्ध मंच ‘सगर राति दीप जरय’ पर उनकी नियमित उपस्थिति ने अनेक साहित्यप्रेमियों और नवोदित रचनाकारों को आकर्षित किया। इस मंच से जुड़कर अनेक

लोगों ने साहित्य को केवल पढ़ने या सुनने की वस्तु नहीं, बल्कि जीवन से संवाद करने की प्रक्रिया के रूप में समझा। मण्डलजी में न किसी प्रकार के आर्थिक लाभ की आकांक्षा दिखाई देती है और न यश-प्रतिष्ठा का लोभ। वे अपने कर्म, विचार और लेखन के बल पर पहचाने जाने वाले साहित्यकार हैं। उनका विश्वास रहा है कि लेखक को समाज से कटकर नहीं, समाज के बीच रहकर लिखना चाहिए। इसी कारण उनका साहित्य बनावटी नहीं लगता; उसमें खेत, श्रम, परिवार, संघर्ष, अभाव और मनुष्य की नैतिक जिजीविषा स्वाभाविक रूप से उपस्थित रहती है। आज मिथिला का साहित्यिक समाज उन्हें एक ऐसे कर्मशील रचनाकार के रूप में जानता है, जिसने लेखन को जीवन-साधना का रूप दिया है।

उनके साहित्य में गाँव, किसान, मजदूर, गृहस्थ जीवन, सामाजिक असमानता, लोक-नैतिकता और बदलते समय की पहचान स्पष्ट रूप से मिलती है। वे जीवन को केवल भावना के आधार पर नहीं देखते, बल्कि अनुभव और यथार्थ के आधार पर समझते हैं। उनके यहाँ करुणा है, पर अनावश्यक भावुकता नहीं; हास्य है, पर हल्कापन नहीं; व्यंग्य है, पर कटुता नहीं; विचार है, पर उपदेश का बोझ नहीं। उनके पात्र साधारण ग्रामीण लोग होते हैं, पर उनके भीतर जीवन का बड़ा अनुभव छिपा रहता है। किसान, गृहिणी, भाभी, पड़ोसी, बूढ़े, व्यापारी, मित्र और काका जैसे पात्र उनके यहाँ अपने समय और समाज के प्रतिनिधि बन जाते हैं।

मण्डलजी के साहित्य में व्यक्ति और समाज अलग-अलग नहीं हैं। व्यक्ति का दु:ख समाज से जुड़ा रहता है और समाज की गलती व्यक्ति के जीवन को प्रभावित करती है। उनकी कथा-दृष्टि की विशेषता यह है कि वे बड़े प्रश्नों को छोटे-छोटे प्रसंगों से सामने लाते हैं। कभी रास्ते में कही गई एक बात से पूरी कथा खुलती है, कभी चाय के एक गिलास से पति-पत्नी का सम्बन्ध सामने आता है, कभी डूबी हुई फसल से पूरी ग्रामीण अर्थव्यवस्था की समस्या स्पष्ट होती है, और कभी बाँस की घटती

उपयोगिता से बाजार तथा गाँव की बदलती स्थिति पर विचार उठता है। यही उनकी कथाओं को विशेष बनाता है।

इस संग्रह का शीर्षक त्रिकालदर्शी अपने भीतर गहरा अर्थ रखता है। त्रिकालदर्शी का अर्थ केवल भूत, वर्तमान और भविष्य को देखने की चमत्कारी शक्ति नहीं है। जीवन में इसका सही अर्थ है पुराने अनुभव से सीखना, वर्तमान परिस्थिति को समझना और भविष्य की दिशा को विवेक से देखना। इस संग्रह की कथाओं में यही दृष्टि बार-बार दिखाई देती है। कहीं अंधविश्वास और तर्क का संघर्ष है, कहीं किसान का श्रम और बाजार की चुनौती है, कहीं मौसम और खेती का ज्ञान है, कहीं परिवार और समय का प्रश्न है, कहीं साहित्यिक आयोजन और सामाजिक व्यवहार है, कहीं बाढ़ और गाँव की व्यवस्था है, तो कहीं आशा और गलत निर्णय की समस्या है। इस दृष्टि से यह संग्रह केवल कहानियों का संग्रह नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन का विचारपूर्ण चित्र भी है।

मैंने इस संग्रह का हिंदी अनुवाद करते समय यह ध्यान रखा है कि हिंदी पाठक को मूल मैथिली कथा का भाव, लय और जीवन-संवेदना मिल सके। अनुवाद मेरे लिए केवल शब्द बदलने का काम नहीं, बल्कि मूल रचना की आत्मा को दूसरी भाषा में पहुँचाने का प्रयास है। मण्डलजी की भाषा में लोकजीवन की गति, संवाद की आत्मीयता और ग्रामीण अनुभव की गहराई है। इसलिए इन कथाओं को हिंदी में लाते समय केवल शब्दशः अनुवाद पर्याप्त नहीं था। जहाँ मूल लोक-प्रयोग का सीधा हिंदी रूप सम्भव था, वहाँ उसे रखा गया है; और जहाँ वह हिंदी पाठक के लिए कठिन हो सकता था, वहाँ भाव के अनुसार सरल रूप अपनाया गया है। मेरा प्रयास यही रहा है कि हिंदी पाठक इन कथाओं को पढ़ते हुए मिथिला के जीवन को निकट से अनुभव कर सकें।

इस संग्रह की पहली कथा भूतग्रस्त या भविष्य सचेत

लोकविश्वास, अफवाह, पारिवारिक भरोसे और तर्कशील दृष्टि की कथा है। नेबुआवाली भाभी के एक वाक्य से कथा शुरू होती है, पर वही वाक्य धीरे-धीरे ग्रामीण समाज की मानसिकता, स्त्री-समूह के संवाद, पति-पत्नी के विश्वास और अंधविश्वास की परतों को खोलता है। कथा की विशेषता यह है कि कथाकार भूत की धारणा को सीधे अस्वीकार नहीं करते, बल्कि मनुष्य के मन में उठने वाले भय, शंका, स्मृति और तर्क को सामने लाते हैं। पाठक के मन में यह जिज्ञासा बनी रहती है कि घर में सचमुच कोई अदृश्य संकट है या गाँव की बातें, झगड़े और कल्पनाएँ मिलकर भूत का रूप बना रही हैं। अंत में स्पष्ट होता है कि भूत कोई अलौकिक सत्ता नहीं, बल्कि अफवाह, सामाजिक कटाक्ष और स्त्री-विवाद का रूप है। इस कथा में अंधविश्वास को हास्य, आत्मचिन्तन और पारिवारिक विश्वास के माध्यम से समझाया गया है।

दूसरी कथा बाँसवारी की पीड़ा मिथिला के ग्राम्य अर्थशास्त्र को समझने वाली कथा है। बाँस यहाँ केवल एक पौधा नहीं है; वह किसान की उपयोगी पूँजी, घर-गृहस्थी का आधार और ग्रामीण निर्माण की रीढ़ है। जोगारी भाई के माध्यम से कथाकार दिखाते हैं कि जो बाँस कभी गाँव की आर्थिक ताकत था, वह धीरे-धीरे उपयोग से बाहर होता जा रहा है। ईंट के घर, नई योजनाएँ, बदलती जरूरतें और बाहरी व्यापारियों की दृष्टि मिलकर बाँस की स्थानीय अर्थव्यवस्था को प्रभावित करते हैं। किसान के सामने यह प्रश्न खड़ा होता है कि वह अपनी रोपी हुई सम्पत्ति को बचाए, बेचे या समय की मार के आगे छोड़ दे। यह कथा बताती है कि किसी वस्तु का महत्व घटना केवल आर्थिक हानि नहीं, बल्कि जीवन-पद्धति के बदलने का संकेत भी है।

तीसरी कथा गुणहीन कौन? कृषि, स्वाद, बाजार और समाज की बदलती भोजन-संस्कृति पर आधारित है। लौकी जैसी गुणकारी सब्जी, जिसे लोकजीवन में स्वास्थ्य और सादगी से जोड़ा गया है, धीरे-धीरे भोज

और सामाजिक उपयोग से बाहर होती जा रही है। जीवानन काका की खेती सफल है। फल अच्छे हैं, मेहनत पूरी है, खाद-पानी का प्रबन्ध है, फिर भी बिक्री नहीं होती। तब प्रश्न उठता है- गुणहीन कौन है, लौकी या खाने वालों का बदला हुआ मन? यही प्रश्न कथा को महत्त्वपूर्ण बनाता है। यह कथा दिखाती है कि केवल उपज होने से किसान का जीवन नहीं चलता; समाज की रुचि और बाजार का व्यवहार भी बहुत महत्त्व रखते हैं। एक साधारण लौकी के माध्यम से कथाकार समाज के बदलते स्वाद और बाजार-मानसिकता पर प्रश्न उठाते हैं।

चौथी कथा परिस्थिति से समझौता पति-पत्नी, समय, श्रम और आधुनिक सुविधा के बीच संतुलन की कथा है। लाल काका अनुशासनप्रिय व्यक्ति हैं। उनके लिए भोर का समय कर्म का आधार है। लाल काकी भी अपने ढंग से जीवन को समझती हैं। उनका संसार घर, समाज, बाढ़, भोजन और परिस्थिति से जुड़ा है। दोनों के बीच तनाव है, पर वह टूटन का तनाव नहीं, समझ बनने का तनाव है। पाठक इस घरेलू संवाद से समझता है कि जीवन केवल नियम से नहीं चलता और केवल भावना से भी नहीं। अंत में गैस चूल्हे की आवश्यकता स्वीकार करना केवल सुविधा का निर्णय नहीं, बल्कि बदलते समय के साथ व्यावहारिक समझौता है। यह कथा दिखाती है कि परम्परा और आधुनिकता का संघर्ष रसोई, चाय और दैनिक जीवन में भी दिखाई देता है।

पाँचवीं कथा जिसका चूना, उसका पुण्य साहित्यिक आयोजन, सामाजिक सहयोग, मंचीय व्यवहार और श्रेय-बोध पर आधारित विनोदी व्यंग्य है। कथा में चूना-तम्बाकू का प्रसंग केवल हँसी पैदा करने के लिए नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवहार का प्रतीक बन जाता है। किसका सहयोग है, किसका श्रेय है, किसका पुण्य है और किसकी भागीदारी है, ये प्रश्न कथा में धीरे-धीरे खुलते हैं। मंच पर साहित्यकार, पत्रकार, कलाकार, स्थानीय लोग, नए कवि, पुराने कवि, संचालक और श्रोता

मिलकर समाज का मिला-जुला रूप सामने लाते हैं। दीनानाथ बाबा की पचास वर्ष पुरानी कविता पर जो प्रतिक्रिया होती है, वह केवल हास्य नहीं, बल्कि समय और साहित्य के सम्बन्ध पर भी सोचने को विवश करती है। इस कथा में मण्डलजी साहित्यिक समाज को भी ग्रामीण समाज की तरह ही देखते हैं, जहाँ अपनापन, उलझन, दिखावा, उत्साह और हास्य साथ-साथ चलते हैं।

छठी कथा त्रिकालदर्शी इस संग्रह की मुख्य वैचारिक कथा कही जा सकती है। बाढ़ से डूबे खेत, नष्ट हुए पौधे, गाँव की जल-व्यवस्था, किसान की टूटती आशा और देवी काका की जीवन-दृष्टि मिलकर कथा को गहराई देते हैं। यहाँ त्रिकालदर्शिता किसी चमत्कार का नाम नहीं, बल्कि अनुभव से प्राप्त विवेक का नाम है। देवी काका भूत को इतिहास, वर्तमान को संकट और भविष्य को सम्भावना के रूप में देखते हैं। वे दुःख को नकारते नहीं, पर उसमें डूबते भी नहीं। वे सुजीवन की बात करते हैं। सुजीवन का अर्थ किसी बाहरी सुखलोक से नहीं, बल्कि गाँव में ही सुविचार, सुकर्म, सुकृति और सुवृत्ति के आधार पर बेहतर जीवन बनाने से है। यह कथा किसान-जीवन को विचार और दर्शन की ऊँचाई पर ले जाती है।

सातवीं कथा बाढ़ का बड़ा फेर किसान-जीवन पर जल-संकट और मानवीय भूल की मार को सामने लाती है। जीवानन जब खेत देखने जाता है और डूबे हुए बधार को देखता है, तो भीतर से टूट जाता है। उसके शरीर की शक्ति जैसे समाप्त हो जाती है, पर संतोखी लाल उसे सँभालते हैं। इस कथा में एक किसान की व्यक्तिगत पीड़ा धीरे-धीरे पूरे गाँव के सामुदायिक संकट में बदल जाती है। संतोखी लाल गाँव के आँट-पेट की बात करते हैं, जमीन और जनसंख्या के असंतुलन की बात करते हैं, और नहर, सड़क, बाँध तथा प्रशासन की दूरदर्शिता पर प्रश्न उठाते हैं। पाठक यहाँ केवल एक किसान का बेहोश होना नहीं पढ़ता, बल्कि पूरे गाँव की भविष्यहीन होती जमीन का दर्द महसूस करता है। यह कथा

बताती है कि प्राकृतिक संकट कई बार मानवीय लापरवाही और दूरदर्शिता के अभाव से और भी भयंकर हो जाता है।

आठवीं कथा आशा पर पानी फिरा आशा, निर्णय, भ्रम और जीवन की दिशा की कथा है। रमेश और जीवछ भाई के पुराने सम्बन्धों के माध्यम से कथा स्मृति, लोकलाज, मित्रता और वर्तमान संकट को जोड़ती है। जीवछ भाई खेती की मिट्टी से हटकर मछली-पालन में आशा देखते हैं, पर बरसात पोखर की मछलियों को बहा ले जाती है। यह घटना केवल मछलियों के बह जाने की नहीं, बल्कि किसान की दिशाहीन आशा पर पानी फिरने की कथा है। कथा यह प्रश्न उठाती है कि यदि विकास का नया रास्ता अनुभव से कटकर चुना जाए, तो वह सचमुच उन्नति देगा या नई समस्या पैदा करेगा। इसमें सरकारी विचार, किसान की आकांक्षा, बाजार की सम्भावना और प्रकृति की अनिश्चितता एक साथ सामने आते हैं।

इन आठों कथाओं को एक साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि त्रिकालदर्शी केवल ग्रामीण जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं का संग्रह नहीं है। यह मिथिला के लोकजीवन में हो रहे गहरे परिवर्तन का साहित्यिक चित्र है। इसमें अंधविश्वास है, पर विवेक भी है; संकट है, पर साहस भी; परम्परा है, पर परिवर्तन की आवश्यकता भी; बाजार है, पर नैतिक प्रश्न भी; बाढ़ है, पर जीवन को फिर से सँभालने की इच्छा भी। यही मण्डलजी की कथा-दृष्टि को विशेष बनाता है।

अनुवादक के रूप में मेरी अपनी जीवन-दृष्टि भी गाँव, प्रकृति, समाज और अनुभव से बनी है। मैंने लोकजीवन को केवल बाहर से नहीं देखा, बल्कि उसे अपने जीवन में अनुभव किया है। खेत, पेड़, नदी, बाढ़, मेला, लोक-सम्बन्ध, परिवार, विश्वास और सामाजिक संघर्ष मेरे अपने अनुभव का हिस्सा रहे हैं। इसलिए मण्डलजी की कथाएँ पढ़ते हुए मुझे बार-बार लगा कि ये कथाएँ केवल पढ़ने की वस्तु नहीं, बल्कि भीतर तक

उतरने वाली रचनाएँ हैं। इन्हें हिंदी में रूपान्तरित करते समय मेरी भावना यही रही कि मूल कथा की आत्मा सुरक्षित रहे और हिंदी पाठक उसे अपने निकट अनुभव कर सके।

इस अनुवाद में कई स्थानों पर लोक-शब्दों, संकेतों और भावों को हिंदी में लाते समय विशेष सावधानी रखनी पड़ी है। फिर भी हर जगह यही ध्यान रखा गया है कि अनुवाद न तो मूल से दूर हो और न हिंदी पाठक के लिए कठिन बने। जहाँ लोकगंध आवश्यक थी, वहाँ उसे भाव के रूप में बचाने का प्रयास किया गया है। जहाँ शाब्दिक रूप से अर्थ सीमित हो सकता था, वहाँ हिंदी की स्वाभाविक अभिव्यक्ति अपनाई गई है।

मुझे विश्वास है कि हिंदी पाठक इस संग्रह में मिथिला की मिट्टी, किसान का मन, स्त्री की लोकबुद्धि, बूढ़ों का अनुभव, समाज की विडम्बना, बाजार की मार, प्रकृति का संकट और जीवन के प्रति अटूट विश्वास को एक साथ अनुभव करेंगे। त्रिकालदर्शी हमें समझाता है कि भूत को समझे बिना वर्तमान नहीं समझा जा सकता और वर्तमान को पहचाने बिना भविष्य की सही दिशा नहीं बन सकती। यही इस संग्रह का मूल संदेश है।

इस हिंदी अनुवाद को पाठकों के सामने रखते हुए मैं आशा करता हूँ कि वे इसे केवल कहानी-पाठ के रूप में नहीं, बल्कि ग्रामीण जीवन के अनुभव, सामाजिक विवेक और मानवीय आशा के दस्तावेज के रूप में स्वीकार करेंगे। यदि यह अनुवाद मूल मैथिली कथाओं की संवेदना और मण्डलजी की जीवन-दृष्टि को हिंदी पाठकों तक पहुँचा सके, तो मैं अपने श्रम को सार्थक मानूँगा।

- अच्छे लाल शास्त्री

अनुवादक

भूतग्रस्त या भविष्य-सचेत

जेठ का महीना था। शाम के पाँच बज रहे थे। मैं मधुबनी से लौट ही रहा था कि गाँव के किनारे नेबुआवाली भाभी मिल गईं। वे बिस्टौल हाट जा रही थीं। वहाँ सोमवार और शुक्रवार को हाट लगता है। उस दिन शुक्रवार था। मिलते ही बोलीं:

"जरा साइकिल रोकिए।"

वैसे मैंने साइकिल पूरी तरह रोकी तो नहीं, लेकिन भाभी के नजर में आते ही उसकी चाल थोड़ी धीमी और अस्थिर कर दी थी। मैंने पूछा:

"साइकिल क्यों रुकवाई?"

मैं साइकिल पर ही चढ़ा रहा, पर एक पाँव जमीन पर टिकाकर ठहर गया। मेरे ठहरते ही भाभी बोलीं:

"घरवाली को भूत लग गया है और आप साइकिल पर चढ़े बेखबर घूम रहे हैं!"

नेबुआवाली भाभी को यह मालूम नहीं था कि मैं मधुबनी से लौट रहा हूँ। कारण यह था कि जैसे मैं गाँव-घर में धोती-कुर्ता पहनता हूँ और कंधे पर गमछा रखता हूँ, वैसे ही झंझारपुर और मधुबनी जाते समय भी रहता हूँ। शायद इसी कारण वे यह नहीं समझ पाईं कि मैं मधुबनी से आ रहा हूँ। ऐसा भी नहीं था कि साइकिल की चाल और मौसम के हिसाब से मेरा शरीर पसीने से भीगा नहीं था या ठुड्डी से पसीने की धार नहीं बह

रही थी। पसीना तो बह ही रहा था। लेकिन भाभी की नजर उधर इसलिए नहीं गई कि धूप की चाल में उनकी अपनी देह भी पसीने से भीगी हुई थी।

उस दिन सुबह की अदालत थी। मैं चार बजे भोर में उठकर तैयार हुआ और मधुबनी चला गया था। अदालत उठने के बाद ढाई बजे अगली तारीख लेते-लेते और मुंशीजी से बातचीत करते-करते तीन बज गए। सवा तीन बजे मधुबनी से चला था। अदालत का काम ढीला-ढाला चलता है, इसलिए मन में ऐसी कोई बात भी नहीं थी कि मन कहीं और भटकता रहता। मैं स्थिर ही था। हाँ, अदालत में मन भटकने का कारण होता है, क्योंकि अदालत से किसी को धन भी मिलता है और किसी का जीवन भी चला जाता है। लेकिन यहाँ वैसी बात नहीं थी। अपना पैंतीस साल पुराना अगलगी का 436 नंबर वाला केस है। जिस समय यह केस हुआ था, उस समय खेत-पथार का झंझट गाँव-गाँव में फैला हुआ था। वैसे यह भी नहीं कहा जा सकता कि अब खेत-पथार का झंझट नहीं है। अब भी है ही। यदि वैसा नहीं होता, तो जो बिल्कुल गरीब है, जिसके नाम एक धुर जमीन भी नहीं है, उसे सरकारी घर भी कहाँ मिलता है।

दूसरे गाँवों की तरह हमारे गाँव में भी बाहर रहने वाले जमींदार की जमीन को लेकर झंझट हुआ। दखल-दिहानी की दौड़ में अगलगी का केस हुआ। जमीन पर टाट-बाड़ खड़ी करके जमींदार के लगुए-भगुओं ने आग लगाई थी और उसी आग लगाने के आरोप में हम सबको फँसा दिया गया था। तीस आदमियों पर केस हुआ था। इस बीच जमीन की पूरी दशा बदल गई, लेकिन केस कचहरी में लटका ही रहा। साल में दो बार तारीख लेता हूँ और मधुबनी आता-जाता हूँ। मधुबनी जाने पर बहुत-सी बातें याद आती हैं। स्टेशन के पास का होटल याद आता है, अदालत से जेल और जेल से अदालत आते-जाते समय गाड़ी में सिपाही का पहरा याद आता है। यह भी याद आता है कि जिस अदालत से जेल जाता था,

उसी अदालत से छूटकर भी आता था।

जिस समय केस हुआ था, उस समय की स्थिति और आज की स्थिति में बहुत बदलाव आ गया है। उस समय अगलगी के केस का बड़ा महत्त्व था। महीनों, यहाँ तक कि तीन-तीन महीने तक जमानत नहीं होती थी और सेशन केस के रूप में उसकी तहकीकात भी होती थी। अब वैसा नहीं रहा। न अगलगी के केस उतने अधिक होते हैं और न उसी रूप में उनकी तहकीकात होती है। समय बदलने के बाद अब अपहरण और राहजनी की घटनाएँ बढ़ गई हैं। अब उनका महत्त्व बढ़ गया है।

पैंतीस वर्षों में यह केस भी तीन बार मधुबनी और झंझारपुर के बीच घूम चुका था। झंझारपुर में सेशन कोर्ट शुरू होने पर केस मधुबनी कोर्ट से झंझारपुर आ गया। लेकिन कुछ ही दिनों के बाद फिर मधुबनी चला गया। कारण यह हुआ कि साल भर तक सेशन कोर्ट खाली रहा, जज की अनुपस्थिति बनी रही। वैसे मधुबनी कोर्ट की हालत भी कुछ ऐसी ही रही। अधिकतर कोर्ट जज की अनुपस्थिति में खाली रहने लगे और अब भी हैं ही। फिर भी, न अदालत ने हड़बड़ी मचाई है और न मैंने ही कोई हड़बड़ी मचाई है।

नेबुआवाली भाभी के साथ मेरा संबंध बहुत पुराना नहीं है। हाल के आठ-नौ वर्षों का ही है। वैसे सिंहेश्वर भाई के साथ भाईचारे का संबंध बचपन से है, करीब पचास-पचपन वर्षों से। लेकिन जिस दिन नेबुआवाली भाभी गौने के बाद आईं, उस दिन से लेकर करीब बीस-पच्चीस वर्षों तक देवर-भाभी का वह संबंध नहीं था, जो अब बन गया है। ऐसा भी नहीं कि किसी काम में टोका-टाकी नहीं होती थी, लेकिन वह पारिवारिक काम के अनुकूल ही रहती थी। असली देवर-भाभी के बीच जो व्यक्ति-व्यक्ति का स्नेह-सिक्त संबंध होना चाहिए, वह आठ-नौ वर्षों से बना है। उनकी भी देह की सामर्थ्य ढलान पर उतर गई है और मेरी तो सहज ही उतर चुकी है। इन आठ-नौ वर्षों के संबंध में भाभी भी

मुझे पहचान चुकी हैं और मैं भी उन्हें अच्छी तरह पहचान चुका हूँ। वे अपनी जगह पहचानने योग्य हैं। बोलने-बतियाने में नेबुआवाली भाभी बहुत सपाट और खुली हुई हैं, जैसे अरवा चावल का बासी भात, जिसमें कुछ छिपा नहीं रहता।

इसलिए मन में बहुत अधिक आँधी-तूफान नहीं उठा। उन्होंने जो कहा कि घरवाली को भूत लग गया है और आप बेखबर घूम रहे हैं, इससे मन बहुत आगे-पीछे नहीं हुआ, लेकिन थोड़ी-बहुत कचोट तो लगी ही। कचोट यह लगी कि बात छेड़ते ही नेबुआवाली भाभी ने ऐसा क्यों कहा? यदि परिवार की बात थी, तो कह सकती थीं कि कितनी देर से घर से बाहर हैं। यूँ ही सारी बात सामने आ जाती। लेकिन घरवाली को भूत लग गया है, ऐसी बात क्यों बोलीं? खैर। मन को दबाकर बात बदलते हुए मैंने पूछा:

"इतनी धूप में कहाँ जा रही हैं?"

नेबुआवाली भाभी बोलीं:

"जरा हाट जा रही हूँ। ऐसा धूप वाला समय हो गया है कि सब्जी-भाजी के अभाव में कल रात अचार के साथ ही रोटी खानी पड़ी।"

भाभी की बोली तेल में डूबे आम के तीन फाँकों वाले अचार की तरह अब भी स्वादभरी लग रही थी, लेकिन परिवार की बात सुनकर मन कुछ बैठा हुआ था। मैंने कहा:

"क्या करेंगे, समय ही जब ऐसा धूप वाला हो गया है, तब दूसरा उपाय ही क्या है।"

यह कहकर मैंने साइकिल आगे बढ़ाई। नेबुआवाली भाभी भी उत्तर की ओर हाट की दिशा में बढ़ गईं।

मन में हल्की-हल्की भनभनाहट उठ ही रही थी कि थोड़ा कुरेदकर आगे-पीछे की बात और पूछ लूँ, लेकिन वे पहचानी हुई नेबुआवाली ही

तो हैं, जो तिल को ताड़ और झूठ को सच बनाने में, यदि हजार बार भी बोली का रंग बदलने की जरूरत पड़े, तो मुँह पर ही बदल लेती हैं। इसलिए मन में जैसी मर्म की स्थिति बननी चाहिए थी, वैसी नहीं बनी।

एक लग्गी भर आगे बढ़ा तो मन में उठा कि एक बार पीछे लौटकर भाभी से और बात पूछूँ, लेकिन दूसरे मन ने पहले मन को रोक दिया। इस बात ने रोका कि जब मैं पूरे दिन घर से बाहर रहा हूँ, इस बीच यदि किसी ने पत्नी से वैसी कोई बात कह दी होगी और वे बोलते-बोलते पगली जैसी दशा में आ गई होंगी, तो वही रूप देखकर नेबुआवाली भाभी ने ऐसा कहा होगा। इस अर्थ में कुछ अंश में बात सच भी हो सकती है। लेकिन विचार की दौड़ में वैसा नहीं हुआ, क्योंकि तत्त्वदर्शी चिंतक क्षण भर में छत पर चढ़ जाते हैं और पल भर में पाताल तक पहुँच जाते हैं। मन-ही-मन सोचता भी रहा और साइकिल भी चलती रही।

कुछ और आगे बढ़ते-बढ़ते मन पत्नी के मायके की ओर चला गया। मायके की ओर जाते ही मन में आया कि यदि पत्नी सचमुच भूतग्रस्त होतीं, तो यह बात मायके से ही चली आती। लेकिन वहाँ कभी ऐसा कब लगा? फिर लगा कि धूप में चालीस किलोमीटर साइकिल चलाकर आया हूँ। शायद उससे मेरे चेहरे का रूप बदल गया है, इसलिए कहीं चौंककर नेबुआवाली भाभी ने ऐसा तो नहीं कह दिया? वैसे चारों ओर नजर दौड़ाऊँ कि कोई दूसरा-तीसरा कारण तो नहीं है। लेकिन कोई बात गले नहीं उतरती।

मायके से पत्नी को ससुराल आए किसी तरह तीस-पैंतीस वर्ष तो हो ही गए होंगे। इस बीच जितने बच्चे होने चाहिए थे, वे भी हो ही गए। कभी कुछ नहीं देखा। तब नेबुआवाली भाभी ने ऐसा क्यों कहा? मन पलटा। पलटते ही उठा कि समाज में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं है, जो पति-पत्नी, भाई-भाई, गोतिनों या बाप-बेटे के बीच झूठ-फूस की बात गढ़कर मतभेद पैदा करते हैं। करते ही हैं और खूब करते हैं। समाज भी

तो समाज ही है। किसी के पास मुँह है तो नाक नहीं, किसी के पास नाक है तो मुँह नहीं। फिर भी उन्होंने घर को सँभाले नहीं रखा है, यह भी तो नहीं कहा जा सकता।

थोड़ा आगे बढ़ा कि मन में एक झटका-सा उठा। जेठ का महीना है, दशराहा परसों ही बीता है। गाँव की मान्यता है कि भूत-प्रेत गाछी-बिरछी, यानी पेड़-बागान में रहते हैं। अभी तो दो महीनों से आम-जामुन की हर गाछी में रखवाले बैठे होंगे। तब तो भूत-प्रेत भी रखवालों के डर से भाग गए होंगे। जब आम-जामुन पेड़ों में लटकते रहते हैं और रखवाले गाछी के बीच मचान बनाकर जागते भी रहते हैं और सोते भी रहते हैं, तब किसी को कहाँ भूत लगता है? जब आम-जामुन गाछी-बिरछी में नहीं रहते, तब सूखे पत्ते बटोरने वाली स्त्रियों को कभी-कभी बाँसवारी में चुड़ैल-फुड़ैल लग भी जाती है, लेकिन वह भी तो यह महीना नहीं है।

मन को कितना भी स्थिर करता, फिर भी कुछ-न-कुछ उमड़ ही जाता। अपने घर से थोड़ा पीछे ही था कि मन में फिर उठा, यदि नेबुआवाली भाभी ने झूठ ही कहा हो तो? फिर तुरंत लगा कि भूत भी तो भूत है। क्या वह एक ही तरह का होता है या एक ही होता है? वह भी रंग-बिरंगा होता है। लेकिन वह किस रंग का है, यह तो देखने-समझने के बाद ही साफ होगा। उसके लिए बेकार ही मन को भारी किए हुए हूँ। मन हल्का होते ही मन लोगों के मन को देखने लगा। लोगों के मन की याद आते ही मन स्थिर हुआ। स्थिर होते ही उठा, कहिए! समय इतना आगे बढ़ गया कि लोग आँगन के मंडप से ऊपर उठकर हवाई जहाज में भी विवाह करते हैं, भोज-भात करते हैं, लेकिन गाँव-घर में अब भी भूत-प्रेत लगते ही हैं! इक्कीसवीं सदी में भी यदि लोग इसी तरह भूत में भटकते रहेंगे, तो ओझा-गुनी कहाँ से आएँगे? मन ठिठक गया।

ठिठकते ही मन में उठा कि परसों जेठ का दशराहा था। एक तो तीन महीने से एक बूँद पानी नहीं पड़ा। वैसे ही वायुमंडल गरम है। ऊपर

से धूप भी ऐसी होती है कि मिट्टी का रस इस तरह चूस लेती है कि वह रसहीन हो जाती है। दिन के दस बजे से ही बधार-बन में लू चलने लगती है। हो सकता है कि किसी काम से पत्नी बधार की ओर गई हों और लू लग गई हो, जिससे मन गरम हो गया हो और वे पगली की तरह या भूत लगी स्त्री की तरह बोलने लगी हों। कारण यह कि मौसम के हिसाब से सब कुछ न भी सही, फिर भी बहुत कुछ बदल ही जाता है। मौसमों की अपनी-अपनी चाल और प्रकृति होती है। बरसात के बाद जो स्वाति नक्षत्र आता है, उसकी बूँद यदि केले के मुँह पर पड़े तो कपूर बनती है, सीपी के मुँह पर पड़े तो मोती और साँप के मुँह पर पड़े तो विष। भले ही एक ही नक्षत्र और एक ही वर्षा की बूँद क्यों न हो। उसी तरह जाड़े के बाद के मौसम की बूँद और गर्मी के बाद के मौसम की बूँद में भी तो अंतर होगा ही।

तरह-तरह के विचार मन में उठ ही रहे थे कि घर के पास पहुँच गया। पत्नी को दालान के आगे खड़ी देखा। वे चुपचाप खड़ी थीं, इसलिए बोलने-बतियाने के ढंग का कोई आभास नहीं हुआ। अब तक के जीवन में हम दोनों प्राणियों के बीच जो संबंध रहा है, उसमें कभी कोई खटास नहीं आई, जिससे कोई छोटा-सा भी अविश्वास जगता। हाँ, वैचारिक रूप से कभी-कभी विचार-भेद जरूर होता है, लेकिन उसका समाधान परिवार के चलते जीवन की धारा में अपने-आप हो ही जाता है।

मुझे देखते ही पत्नी बोलीं:

“इतनी धूप में क्यों चले आए? थोड़ी देर मधुबनी में ही ठहर जाते, ऐसा नहीं हो सकता था?”

मन ही नहीं, शरीर और हाथ-पाँव भी थक गए थे, इसलिए पत्नी को जैसा उत्तर देना चाहिए था, वैसा नहीं दे पाया। मन में था कि उनसे कहूँ, यदि लोग जाड़े के डर से, धूप के डर से या आँधी-पानी के डर से घर से निकलना ही छोड़ दें, तब उनके जीवन की गाड़ी कैसे चलेगी? हाँ,

यह दूसरी बात है कि जब समय असहज हो जाता है, तब उसके अनुकूल लोग अपने जीवन को साधते हुए चलते हैं। लेकिन वह नहीं कहा। हारे हुए सिपाही की तरह अपने को समर्पित करते हुए उनसे कहा:

“अब क्या कोर्ट-कचहरी में एक क्षण भी रहने का मन होता है, वह भी मधुबनी में? जितनी देर काम था, उतनी देर काम में खोया रहा। काम होते ही चल पड़ा।”

दूसरी स्त्रियों की तरह पत्नी ने बात को अधिक नहीं बढ़ाया। बोलीं:

“थोड़ी देर छाँह में ठंडे हो लीजिए। बाद में कुछ खा-पी लीजिएगा या पहले नहा लीजिएगा।”

मन में नेबुआवाली भाभी की बात नाच रही थी। लेकिन आगे बढ़कर बोलना भी ठीक नहीं होता। पत्नी का विचार उन्हीं के मुँह से क्यों न सुनूँ? दूसरी स्त्रियों के मुँह की बात से यदि हम दोनों प्राणियों में झगड़ा हो जाए, तो वह भी कैसा होगा? इसलिए मन को दबाकर रखना ही ठीक समझा। मन में यह भी था कि नेबुआवाली भाभी ने जो भूत लगने की बात कही थी, यदि सचमुच लगा होगा, तो बोलने की वाणी से ही समझ जाऊँगा।

कुर्ता-गंजी उतारकर धूप में फैलाते हुए पत्नी से कहा:

“जरा पंखा ले आओ।”

आँगन से पंखा लाकर पत्नी खड़े-खड़े झलने लगीं। दस झोंकों में ही मन शांत हो गया। मन शांत होते ही मैंने कहा:

“नहाना तो है ही, लेकिन पहले पानी पिऊँगा, चाय पिऊँगा और पान खाऊँगा। उसके बाद देखा जाएगा।”

“अरे, बड़बोले!” कहती हुई पत्नी आँगन की ओर चली गईं।

नेबुआवाली भाभी की बात मुँह से बाहर निकलने के लिए धान की बाली की तरह गले में तरतर कर रही थी, लेकिन अपनी थकान और

रास्ते की गर्मी के कारण बातचीत करने की इच्छा मन में नहीं हो रही थी। पत्नी के मुँह की चुहचुहाहट से लग रहा था कि उनके मन में भी कोई ऐसी बात है, जिसे कहने के लिए वे लुस-फुसा रही हैं, लेकिन मुझे धूप से तपकर आया हुआ समझकर उसे भीतर दबाए हुए हैं। हो सकता है, उनके मन में यह हो रहा हो कि धूप से तपे आदमी से कहने पर, गरम मन में, यदि कहीं समझने में उलट-पुलट हो जाए या अपने बोलने में ही कुछ हो जाए, तब उसका अर्थ भी अनर्थ हो जाएगा और उत्तर भी वैसा ही मिलेगा। अच्छा उत्तर तो तभी मिलता है, जब उसके चारों कोण सम बने रहें। कारण यह कि इसी दुनिया में रहना भी है और इसी दुनिया में चारों कोण के लोग हैं।

उम्र अधिक हो जाने पर भी पत्नी के शरीर में अब भी वैसी ताजगी और चुस्ती बची हुई थी, जैसी इस उम्र में दुर्लभ होती है। मोटा-मोटी यही समझिए कि शरीर में शिथिलता उतनी नहीं थी, जितनी अपनी उम्र की दूसरी स्त्रियों में प्रायः दिखती है।

चूल्हे पर चाय की केतली चढ़ाकर, आँच को अच्छी तरह लगाकर, लोटे में पानी लेकर पत्नी पहुँचीं। वैसे अपना मन था कि पहले घुटने से नीचे और पूरी बाँह धो लूँ, क्योंकि वही थकान मारने वाला होता है, लेकिन मन अलसा गया। पत्नी के हाथ से लोटा लेकर दो बार कुल्ला किया और भर छाँक पानी पिया। इसी बीच पत्नी भी चाय लेकर पहुँच गईं। एक गिलास चाय पीकर पत्नी को शाबाशी देते हुए मैंने कहा:

"जैसी चाय पीने की इच्छा थी, वैसी ही तुमने बना दी!"

चाय दूसरे दिनों जैसी ही थी, लेकिन शरीर की थकान से भूख बढ़ जाने पर पीने की चीज का स्वाद भी बढ़ ही जाता है। लेकिन पत्नी ने बात का उल्टा अर्थ लगा लिया। उल्टा अर्थ यह कि मैं तो चाय का स्वाद पाकर बोल रहा था, पर पत्नी को लगा कि व्यंग्य में बोल रहा हूँ। फिर तुरंत उन्हें यह भी लगा कि जब रोज इसी चूल्हे पर, इसी हाथ से चाय

बनाती आई हूँ, तब और दिन क्या इनकी इच्छा नहीं भरती थी, जो आज ऐसा बोले? फिर भी पति से जो बात उन्हें कहनी थी, उसके आगे चाय की बात को तुच्छ समझकर वे मन-ही-मन उसे दबाती हुई बोलीं:

"क्या हाथ की पाँचों उँगलियाँ एक-सी होती हैं? उसी तरह पाँच दिनों में पाँच रंग की चाय तो हो ही सकती है। आपको कैसी चाय पीने का मन है और मुझे कैसी चाय बनाने का विचार है, यह चुप्पी से थोड़े चलेगा। यदि ऐसी ही बात थी, तो कह देते कि चाय थोड़ी गाढ़ी कर देना या कोई चीज कम-अधिक कर देना।"

पत्नी की झपट से समझ में आया कि जब तक अपनी ओर से भी वैसा ही नहीं बनूँगा, तब तक ठीक-ठीक काम चलने वाला नहीं है। चाय पी चुका था और पान भी खा चुका था। मैंने कहा:

"गाँव का हाल-चाल अच्छा है न?"

गाँव का हाल-चाल सुनते ही पत्नी के मन में जैसे दोपहर की बात नाच उठी। बोलीं:

"नाहक ही पूरे गाँव से झगड़ा हो गया!"

पत्नी की बात सुनकर मन में उठा कि कोई सामाजिक बात जरूर है। यदि ऐसा नहीं होता, तो एक ही आदमी से झगड़ा होता। पूरे गाँव से क्यों हो गया? लेकिन प्रश्न की जड़ में कहीं-न-कहीं समाज की धारा जरूर छिपी है। इसलिए सामाजिक धारा में तो नहीं, पर मजाक की धारा में मैंने कहा:

"पूरे गाँव के लोगों से झगड़ा कर लिया और बाल वैसे ही दिख रहे हैं, तब झगड़ा कैसा हुआ?"

खीझकर पत्नी बोलीं:

"वह कैसे?"

स्पष्ट करते हुए मैंने कहा:

“जब तक स्त्रियों में बाल पकड़कर झोंटा-झोंटी न हो जाए, तब तक उनके झगड़े का कोई मान थोड़े होता है! वह तो किसी खेल की शुरुआत हुई।”

पत्नी का रूप बदल गया। बोलीं:

“भदुआरवाली कुम्हारिन आई थी। परसों दशराहा था। लोगों ने अपने-अपने मिट्टी के घोड़े चढ़ाए। उधार में लोग एक-एक घोड़ा कुम्हारिन के यहाँ से ले आए।”

मैं बीच में ही बोल पड़ा:

“अरे, इसमें क्या हुआ! ऐसा तो हर साल होता ही है।”

अपने को सँभालते हुए पत्नी बोलीं:

“हर साल घोड़े का दाम उतना ही था, जिस हिसाब से लोग उन्हें देते थे।”

मैंने पूछा:

“इस बार क्या हुआ?”

पत्नी बोलीं:

“भदुआरवाली कुम्हारिन अड़कर खड़ी हो गई कि अब सब कुछ महँगा हो गया है, मेरा भी रंग-रोगन करने का खर्च बढ़ गया है, इसलिए उसी हिसाब से घोड़े का दाम लूँगी।”

पत्नी की बात सुनकर मन हिला। मन के हिलते ही विचार गहरा गया। मैंने कहा:

“यह तो उचित ही हुआ।”

‘उचित’ सुनते ही पत्नी झपटकर बोलीं:

“मैंने भी तो यही कहा था। लेकिन एक ओर ठाढ़ीवाली, ननौरवाली और तमोरियावाली हो गईं और दूसरी ओर नेबुआवाली और

धेपुरावाली। दोनों ओर से कौए की तरह लड़ने लगीं।"

मैंने कहा:

"बाद में क्या हुआ?"

पत्नी बोलीं:

"क्रोध में कहा गया कि तुम लोगों को भूत ने खदेड़ रखा है, इसलिए भुतियाई हुई हो।"

पत्नी की बात सुनकर मन में हुआ कि शायद नेबुआवाली भाभी ने इसी बात को भूत की बात बनाकर मुझे सुनाया था। ❑

बाँसवारी की पीड़ा

☰

गाँव के सभी लोग जोगारी भाई को जानते हैं। वे ऐसे आदमी हैं, जिन्होंने अपना जीवन चलाने के सारे साधन अपने पास जुटाकर रखे हैं। जैसे कोई कुशल किसान अपने खूँटे पर बैल-भैंस के साथ खेती के सारे सामान, हल, कुदाल, खुरपी, हँसुआ से लेकर टेंगारी-कुदाली और पंप-बोरिंग तक, अपने हाथ में रखकर नियमित और नियमबद्ध जीवन चलाता है, वैसे ही जोगारी भाई भी हैं। जब संसार में मनुष्य बनकर जीवन धारण किया है, तब यदि अपने जीवन को सँभालकर चलने के साथ दूसरों की सेवा न हुई, तो भक्ति क्या और भजन क्या? और यदि भक्ति-भजन करते हुए जीवन ही न चला, तो जीवन भी क्या? जीवन की आवश्यकता इस बात पर निर्भर करती है कि हम कैसा जीवन बनाकर चलना चाहते हैं।

चालीस वर्ष पहले जोगारी भाई ने तीन कट्ठा में बाँसवारी लगाई थी। पिता से मिली पुरानी बाँसवारी काट-छाँट और खोज-खुरचन के कारण लगभग उजड़ चुकी थी। उससे अपनी आवश्यकता पूरी होने की संभावना उन्हें नहीं दिखती थी। बाँस की जरूरत भी तो कम नहीं होती। घर-गृहस्थी से लेकर टाट-बाड़, बाड़ी-झाड़ी, मचान और घरेलू बाड़ी-बगान तक, हर जगह उसकी जरूरत पड़ती है। उस पर हम सब ऐसे किसान परिवार में जन्मे हैं, जिसके पास बाँस उपजाने का साधन, यानी जमीन भी है। बाँस गाँव की ऊँची जमीन की पैदावार है। अपना इलाका

बाढ़-बर्षा वाला है, जहाँ गाँव की आधी से अधिक जमीन या तो चौर है या ऐसी नीची भूमि, जिसमें बाँस नहीं लग सकता। बाँस ऐसी जमीन में फलता है, जो घराड़ी के समान ऊँची और ठोस हो। जिस गाँव में घर बनाने भर की जमीन सबके पास नहीं है, वहाँ बाँस लगाने का साधन कहाँ से आएगा? जोगारी भाई के साथ ऐसी असुविधा नहीं थी। पुरानी बाँसवारी को उन्होंने तीन-चार साल तक रखकर किसी तरह काम चलाया। सारे काम उससे नहीं चलते थे, फिर भी बिक्री-बट्टा न होने पर भी अपना काम तो चल ही जाता था। लेकिन बाँसवारी दिन-प्रतिदिन नीचे की ओर ढलती जा रही थी, जिससे आगे बाधा आनी ही थी। यही सोचकर जोगारी भाई ने नई बाँसवारी लगाने का निश्चय किया।

जुड़शीतल पर्व चैत और बैशाख के बीच की सीमा है। जैसे चैत की गाछी और माघ की बाछी निरोग मानी जाती है, वैसे ही बाँस भी होता है। जैसा बाँस रोपा जाता है, उसमें नई कोंपल निकलती ही है। रोपने के बाद यदि नियमित पटवन हो, तो वह अपनी कोंपल को बचाकर नए बाँस के रूप में खड़ा कर देता है। लोग लोटा-बाल्टी से गाछी-कलम में जलधार करते ही हैं। तुलसी जैसे छोटे पौधे के लिए यदि प्रतिदिन एक कलश पानी की जरूरत होती है, तो बड़े पेड़ के लिए उससे अधिक जरूरत होगी ही। तुलसी का पौधा छोटा होता है, इसलिए उसकी जड़ें धरती की ऊपरी परत में रहती हैं। ऊपर की मिट्टी चाहे तो खिसक जाती है या सूख जाती है, जिससे वह रसहीन हो जाती है। रसहीन होने पर उसके सूखने की संभावना भी बढ़ जाती है। बड़े पेड़ की जड़ें अधिक नीचे तक जाती हैं, इसलिए तुलसी की अपेक्षा उनमें जीवित रहने की संभावना अधिक होती है। फिर भी जुड़शीतल के दिन उसकी जड़ में एक लोटा पानी पड़े या न पड़े, किसान अपने पर्व-विधान को पूरा करने के लिए एक लोटा जलधार करता ही है। जैसे कहा जाता है, पान न हो तो पान की डंडी ही सही।

आज जुड़शीतल पर्व था, इसलिए किसान परिवार में और भी अधिक काम था। काम के हिसाब से आज का दिन छोटा पड़ जाता है। भोर में उठते ही गाछी-कलम और बाड़ी-झाड़ी में जल देना, पशु-मवेशी को नहलाना-धुलाना, घर के किवाड़, बक्से-बक्सियाँ धोना, आँगन-घर के रास्ते-पगडंडी को जुड़ाना, पोखर के घाट और कुएँ की सफाई करना, सब कुछ करना होता है। उसके साथ चैत का पकाया बैशाख में खाकर पूरा करने का विधान भी है। इतना ही नहीं, समाज के साथ महादेव-पार्वती का नाच, 'जय शिव, जय शिव' करते हुए पूरे गाँव में घूमना भी है। यह तो दोपहर से पहले का काम हुआ। दोपहर के बाद का काम भी पीछे पड़ा है, जिसे शाम तक पूरा करना है। वह है किसानी जीवन के उपद्रवी जानवरों को गाँव के वन-झाड़ से हाँकते-हाँकते सीमा पार भगाना। उस पर यदि सीमा पार करते समय दूसरे गाँव के लोगों से भिड़ंत हो गई, तब तो और भी बेठिकाने का काम हो गया। जो हो, जोगारी भाई ने उसी दिन मन में रोप लिया कि जिस दिन बाँस रोपने का मुहूर्त बनेगा, उस दिन तीन कट्ठा में बाँस जरूर रोपेंगे। वैसे बाँस रोपने का मुहूर्त केवल जुड़शीतल का दिन ही नहीं है। उससे पहले भी उतने ही दिन हैं, जितने उसके बाद। दोनों ओर अपनी-अपनी परिस्थिति है। एक ओर पानी, यानी पटवन की जरूरत कम है, तो दूसरी ओर पानी की जरूरत अधिक है। यही सोचकर जोगारी भाई ने तय कर लिया कि जुड़शीतल के दिन किसानी के दूसरे काम छोड़कर, पर्व मनाते हुए तीन कट्ठा में बाँस रोपेंगे। बाँस रोपेंगे या बाँसवारी लगाएँगे? अभी तो बाँस ही रोपना होगा; लगने के बाद ही वह बाँसवारी कहलाएगा। जैसे किसी वैचारिक संस्था को पहले विचार में लाया जाता है, बाद में उसकी नींव रखी जाती है, उसी तरह जोगारी भाई ने जीवन की मूल जरूरत को पहले मन में रोपा और उसकी पूर्ति का विचार ठान लिया।

बीट में पुराने, पके और झुराए बाँसों के साथ सूखे बाँस भी रहते

हैं, लेकिन वंश-वृद्धि के लिए वही बाँस रोपा जाता है, जिसमें कोंपल की आँख हो और रोपने के बाद वह नई कोंपल दे सके। ऐसा बाँस तो नहीं रोपा जाएगा, जिसकी आँख ही मर चुकी हो। पुरानी बाँसवारी से नया, यानी ताजा जवान बाँस चुनकर जोगारी भाई पहले ही रख चुके थे। चालीस बाँस रोपने थे, जिन्हें बीट से उखाड़ना भी था। काम लंबा-चौड़ा था, फिर भी जोगारी भाई के मनसूबे में रत्ती भर भी कमी नहीं थी। उन्हें विश्वास था कि एक-एक बाँस उखाड़कर रोपने में अधिक समय नष्ट होगा, इसलिए एक झोंक में पहले चालीसों उखाड़ लेंगे, दूसरे झोंक में रोप देंगे और तीसरे झोंक में पटवन करके सबेरे-सवेरे घर लौट आएँगे। उन्होंने वैसा ही किया। दूसरी खेती-बाड़ी की तरह जोगारी भाई की बाँसवारी भी अच्छी बनी। पुराने बीट के बाँस समाप्त होते-होते नए बीट का बाँस शुरू हो गया।

किसानी जीवन की नकदी खेती तो बाँस ही है। ऊपर से गाँव-गाँव में बाजार भी बन गया है। उपजाने वाले किसान थोड़े हैं, लेकिन जरूरत तो पूरे गाँव में रहती ही है। अब तक के जीवन में बाँस जोगारी भाई को सहायक पूँजी के रूप में साथ देता आया था। लेकिन दिन-प्रतिदिन गाँव का बाजार टूटने लगा। कुछ लोगों ने ईंट के घर बना लिए, इसलिए बाँस की जरूरत कम हुई। बात केवल इतनी ही नहीं रही। बाँस की दूसरी जरूरत बाड़ी-बगान, बरसाती तरकारी के मचान और घरेलू ढाँचों में होती थी। वह भी कम हो गई।

बाँस लगाने के पाँच वर्ष बाद जोगारी भाई की अच्छी बाँसवारी बन गई। बाँस की बाँसवारी हो, शीशम की शिशमानी हो या दूसरे पेड़ों की गाछी, लगाने के दिन लगाने वाले में विशेष जिज्ञासा रहती ही है। लेकिन कुछ ही लगाने वाले ऐसे होते हैं, जो उसे धनबल समझकर धन की तरह सँभालते हैं। अधिकतर लोग एक झोंक में लगाने वाले होते हैं। झोंक भी क्या कोई एक ही तरह का होता है? हर काम में सब तरह के

झोंक वाले लोग होते हैं। कुछ पढ़ने वाले अपने को पढ़ाई की ओर इस तरह झोंक देते हैं कि या तो दुनिया से खो जाते हैं या दुनिया ही उनसे खो जाती है। उसी तरह धन-उपार्जन में भी कुछ लोग अपने को इस तरह झोंक देते हैं कि या तो भोगी बन जाते हैं, जिससे अच्छे-बुरे का विचार मन से खो जाता है, या योगी बन जाते हैं, जो जितनी जरूरत देखते हैं, उतना ही उपार्जन करते हैं। खैर, जहाँ जो है, लेकिन जोगारी भाई के साथ ऐसा नहीं था। वे बाँस को अपनी उपयोगी वस्तु भी समझते थे और किसानी जीवन की नकदी पैदावार भी मानते थे।

बाँस उपजने की तीन पीढ़ी बाद, जैसे बाबा की अमलदारी आते-आते मनुष्य में मृत्यु की संभावना आने लगती है, वैसे ही बाँस का भी है। पुराने बाँस को बीट से निकालना अनिवार्य हो जाता है, नहीं तो वह मनुष्य जैसा ही हो जाएगा। यदि पिछली पीढ़ी के बाबा-परबाबा और उनसे भी ऊपर के सभी लोग परिवार में जीवित ही रहें, तो अगली पीढ़ी की वृद्धि में बाधा उपस्थित हो ही जाएगी। बाँस का भी यही हाल है। तीन-चार पीढ़ी के बाद यदि बीट से पिछले बाँस नहीं निकाले जाएँगे, तो अगले बाँस प्रभावित होंगे ही। लेकिन जोगारी भाई की आय रहते हुए भी आय में खलल पड़ गया। खलल यह पड़ा कि अपने परिवार में जितनी उपयोग की जरूरत थी, उसके अतिरिक्त बिक्री-बट्टे के लिए जो उत्पादन था, उसमें कमी आ गई। धनबल रहते हुए भी जोगारी भाई धनहीन होने लगे। वस्तु के हिसाब से गाँव में खरीदार कम होने लगे। इससे उचित लाभ में कमी आई। कारण यह हुआ कि कुछ लोग गाँव से बाहर हो गए, बाड़ी-बगान का काम कम हुआ और बाँस की जरूरत घटने लगी। दूसरी ओर नई-नई योजनाओं के अंतर्गत और अपनी कमाई-खटाई से भी कुछ लोग पक्का घर बनाने लगे। इससे घर-गृहस्थी में बाँस का काम कम हुआ और बाँस की बिक्री में मंदी आ गई। जोगारी भाई भी इससे प्रभावित हुए।

चालीस वर्ष के बाद जोगारी भाई दरवाजे पर बैठकर अपने

किसानी जीवन की समीक्षा कर रहे थे। वे सोच रहे थे कि जीवन का कौन-सा लाभ बचा है और कौन-सा खो गया। उसी में सघन बाँसवारी की स्थिति भी उनके विचार में थी।

इसी बीच पत्नी आकर बोलीं:

“मन-तन गड़बड़ है क्या, जो इतने उदास दिख रहे हैं?”

अपनी पीड़ा छिपाते हुए जोगारी भाई बोले:

“उदास नहीं हूँ, अचकचाया हुआ हूँ। चाय पी लूँगा तो मन साफ हो जाएगा।”

पति के मुँह से चाय की बात सुनते ही फुलकुमारी बोलीं:

“चाय बनाकर ही तो देखने आई थी कि दरवाजे पर हैं या नहीं।”

पत्नी की बात सुनकर जोगारी भाई के मन में थोड़ी-सी कचोट हुई। कचोट यह कि जब उन्हें शंका थी कि मैं दरवाजे पर हूँ या नहीं, तब बिना ठिकाना पाए चाय क्यों बना ली! यदि मैं दरवाजे पर नहीं रहता, तो वह चाय पानी ही बन जाती न! लेकिन तुरंत मन में उठा, एक तो हथियार से कटा घाव, उस पर यदि नमक छिड़क दिया जाए, तो मूर्खता के अलावा और क्या होगी। एक तो वैसे ही घाव की टीस है, ऊपर से नमक मिल गया तो वह और टहकेगा ही। इससे अच्छा है कि धीरे से अपने मन की पीड़ा पत्नी को ही सुना दूँ। अर्धांगिनी हैं। यदि आधा भी दर्द हर लेंगी, तो आधा ही बचेगा। आधा तो कम होगा ही। यही सोचकर जोगारी भाई बोले:

“शुभ काम में जितनी देर करोगी, वह उतना ही अशुभ होगा। इसलिए पहले चाय पिलाओ।”

पति का हलचल-कलकल भरा विचार सुनकर फुलकुमारी मुस्कुराती हुई चाय लाने आँगन में चली गईं।

दरवाजे से फुलकुमारी के हटते ही जोगारी भाई का मन फिर उसी

तरह बादलाने लगा, जैसे सावन-भादो में पुरवैया का झोंका पाकर मेघ बादलाते हैं। मन में फिर उठा कि अपने जीवन का अमूल्य समय, श्रमशील समय, कहीं यों ही नष्ट तो नहीं हो जाएगा!

अपने श्रम को नष्ट होते देखते ही जोगारी भाई के मन का विचार आगे बढ़ा। मन में उठा कि क्या बाँस का उपयोग इतना ही है कि अपनी कठिन मेहनत से जोड़ी हुई पूँजी नष्ट हो जाए?

जोगारी भाई का मन ठिठका। ठिठकते ही आगे बढ़ा। अब तक बाँस का जितना काम हम सब करते आए हैं, वह केवल किसानी जीवन के उपयोग में किया है। लेकिन जब जीवन आगे बढ़ेगा, तब मशीन की जरूरत भी होगी ही।

दुनिया आज ऐसी हो गई है कि जिसके पास जितनी आगे बढ़ी हुई मशीन है, वह उतना ही शक्तिशाली देश बना है। बाँस से अनेक उपयोगी वस्तुएँ, कागज, कपड़ा आदि बनती ही हैं, जिनका उपयोग केवल आज नहीं, आगे भी होता रहेगा। लेकिन बाँस का उत्पादन तो वहीं होगा, जहाँ अनुकूल वातावरण होगा। जहाँ बाँस उपजाने की समुचित भूमि और समुचित मौसम है, वहाँ से कम-से-कम कपड़ा और कागज की जरूरत तो हर जगह पूरी हो सकती है।

इसी बीच फुलकुमारी चाय लेकर दरवाजे पर आ गईं।

पत्नी के हाथ में चाय का गिलास देखते ही जोगारी भाई के मन में विचार की चाह भी जाग चुकी थी। विचार का वन इतना सघन हो गया था कि पत्नी के हाथ की चाय पर उनकी नजर उस रूप में पड़ी ही नहीं, जिस मन से फुलकुमारी चाय लेकर आई थीं। फिर भी पत्नी के हाथ से चाय लेते हुए जोगारी भाई ने आँख से आँख जरूर मिलाई। आँख मिलते ही फुलकुमारी बोलीं:

“बहुत देर पहले बनी चाय है। देखिएगा, स्वाद में कहीं बासापन

न आ गया हो।”

पत्नी की बात सुनकर जोगारी भाई के मुँह से निकल गया:

“बासीपन आए या कुछ और, चाय तो चाय है।”

जोगारी भाई के विचार को फुलकुमारी अच्छी तरह नहीं समझ पाईं, लेकिन अपने हाथ की बनी चाय की प्रशंसा तो सुन ही ली। प्रशंसा सुनकर फुलकुमारी आँगन की ओर मुड़ती हुई बोलीं:

“तब तक आप चाय पीजिए, तुरंत मैं आँगन से आती हूँ।”

तब तक जोगारी भाई दो घूँट चाय पी चुके थे। मन में संतोष की तृप्ति पनप गई थी, इसलिए मुस्कुराते हुए बोले:

“आँगन से ऐसे ही क्यों आओगी, चाय पीकर आना।”

पति के विचार से फुलकुमारी को रत्ती भर भी कचोट नहीं हुई, क्योंकि जो बात वे ढँककर बोली थीं, पति ने उसे खोल दिया था, बस इतना ही। यह तो सभी जानते हैं कि पति-पत्नी के बीच हो या छोटे-बड़ों के बीच, कुछ विचार ऐसे होते ही हैं जिन्हें लोग ढँक-तोपकर बोलते हैं। चाय पीकर और पान खाते ही जोगारी भाई के मन को धक्का-सा लगा। धक्का लगते ही मन धड़कने लगा। धड़कने का कारण यह था कि बाँस केवल आज नहीं, हमेशा से मिथिलांचल की अनमोल उपयोगी वस्तु रहा है। अनुकूल वातावरण पाकर वह आरंभ से फूलता-फलता रहा है। वह हजारों बीघे की कृषि-पैदावार रहा है। आज ग्रामीण उपयोगिता घटते ही बीट-के-बीट बाँस सूख-सूखकर नष्ट हो रहे हैं।

दुर्भाग्य तो मिथिलांचल का रहा ही कि बुद्धि के शिखर पर बैठने वाले मिथिलावासी अपना भला-बुरा समझने के लिए अब भी तैयार नहीं हैं। आज गाँव की जो वस्तुएँ अनुपयोगी होती जा रही हैं, यदि उनका समुचित उपयोग होता, तो क्या जिसे हम मिथिला समझते हैं, वह वैसी ही रहती? एन.एच. 57 बना। इससे सभी गाँवों का नहीं, लेकिन

मिथिलांचल के बहुत-से गाँवों का संपर्क देश के अन्य भागों से बना। गाड़ी-सवारी की सुविधा बढ़ी। बड़े-बड़े व्यापारियों की नजर बाँस पर पड़ी। बाँस उपजाने वालों को भी बाँस अब गाड़ी का बोझ लगने लगा है। भागते चोर की लंगोटी ही सही, लोगों में ऐसा ही मनोभाव पैदा हुआ। मजबूरी का पूरा लाभ उठाने का अवसर उद्योगपतियों को मिल गया।

अपने जीवन के साथ जोगारी भाई समाज का जीवन भी देख रहे थे। चालीस वर्ष पहले रोपी गई सघन बाँसवारी, यानी अच्छे लाभ की संभावना देखकर उनका मन पीछे की ओर भाग रहा था। सैकड़ों बीघे में डूबती समाज की संपत्ति देखकर उनके मन के विचार मुरझाए फूल की तरह झर-झरकर गिर रहे थे। लेकिन उपाय ही क्या था? इसी बीच लक्ष्मीनाथ एक व्यापारी के साथ पहुँचा। अनजान व्यक्ति को देखकर जोगारी भाई ने लक्ष्मीनाथ से पूछा:

"इन्हें नहीं पहचाना?"

व्यापारी चुप ही रहा, लेकिन लक्ष्मीनाथ बोला:

"काका, ये बाँस के व्यापारी हैं। गाँव में जितना बाँस है, सब खरीद लेंगे।"

"गाँव में जितना बाँस है, सब खरीद लेंगे।" यह सुनकर जोगारी भाई के मन में खुशी की लहर उठी। लेकिन तुरंत मन में यह भी उठा कि गाँव में करोड़ों की संपत्ति बाँस के रूप में है। अब तक बाँस की बिक्री का जो भाव रहा है, उसी भाव से खरीदेंगे या कुछ और? लेकिन अपने विचार को मन-ही-मन दबाकर जोगारी भाई बोले:

"यह तो अच्छी बात हुई कि जो संपत्ति नष्ट हो रही है, उसका उपयोग होगा।"

अपनी बात रखते हुए लक्ष्मीनाथ बोला:

"काका, इनका कहना है कि सूखे और बेकार बाँस छोड़कर सभी

हरे बाँस एक ही भाव से खरीद लेंगे।"

लक्ष्मीनाथ की बात सुनकर जोगारी भाई के मन में उठा कि गाँव में अनेक किस्म के बाँस हैं, जो आकार और गुण दोनों में अलग-अलग हैं, तब एक भाव कैसे होगा? विचार को सँभालते हुए वे बोले:

"टके सेर भाजी, टके सेर खाजा।"

मुस्कुराते हुए लक्ष्मीनाथ बोला:

"हाँ, वही समझिए।"

जोगारी भाई ने व्यापारी से पूछा:

"आप कहाँ रहते हैं?"

जैसे मैथिली में जोगारी भाई ने पूछा था, वैसे ही मैथिली में व्यापारी ने भी उत्तर दिया:

"मेरा घर सकरी है। असली व्यापारी दिल्ली के हैं।"

जोगारी भाई ने पूछा: "आपकी साझेदारी है या?"

व्यापारी बोला: "नहीं, साझेदारी कैसे होगी। वे, यानी उद्योगपति, बहुत बड़े कारोबारी हैं। मैं एक अदना आदमी हूँ। ऐसे में साझेदारी कैसे होगी?"

जोगारी भाई ने पूछा: "तब आप?"

व्यापारी बोला: "ट्रक के हिसाब से कमीशन मिलता है।"

जोगारी भाई ने पूछा: "गाँव के सारे बाँस खरीद लेंगे?"

व्यापारी बोला: "सिर्फ गाँव ही क्यों, पूरे इलाके के बाँस खरीदे जाएँगे। मेरे जैसे सैकड़ों लोग कमीशन पर काम कर रहे हैं।"

जोगारी भाई ने पूछा: "किस भाव से बाँस खरीदते हैं?"

व्यापारी बोला: "जो सड़क किनारे, यानी एन.एच. के बगल में है, उसका भाव अस्सी रुपए प्रति बाँस है। लेकिन जो जितना हटकर है,

उसका भाव उतना कम होता जाता है।”

अपने गाँव का हिसाब अनुमान से मन-ही-मन जोड़कर जोगारी भाई को लगा कि जो बाँस दो सौ रुपए में बिकता है, वह सत्तर-पचहत्तर रुपए में जाएगा। ढाई गुना से भी अधिक कम! लेकिन दूसरा उपाय भी तो नहीं है। साल-दर-साल सूख-सूखकर नष्ट होता जा रहा है। जोगारी भाई बोले:

“मिथिलांचल का संस्कार रहा है कि जो दरवाजे पर आ जाए, उसे मन दुखाकर विदा नहीं करते। उस पर आप तो पड़ोसी हैं। लेकिन असली कारोबारी जो हैं, वे तो हजार कोस दूर के हैं ही। कैसे उनका मन दुखाऊँ? जितना बाँस है, उसमें एक बीट अपने लिए रख लूँगा, बाकी सब दे दूँगा।”

व्यापारी के साथ लक्ष्मीनाथ भी उठकर विदा हुआ। जैसे किसी अभावग्रस्त व्यक्ति को कर्ज का रुपया हाथ में आने पर क्षणिक खुशी होती है, वैसी ही खुशी जोगारी भाई को भी हुई। इसी बीच फुलकुमारी दरवाजे पर पहुँचीं। हड्डी चूसते हुए कुत्ते को जैसे अपने ही मुँह के खून का स्वाद तृप्त कर देता है, वैसा ही कुछ जोगारी भाई को लगा। उन्होंने पत्नी से कहा:

“गाड़ी का बोझ उतर गया।” ❑

गुणहीन कौन?

☰

जेठ महीने की पूर्णिमा का दिन था। कुछ दिन पहले बैरसाइत से पहले वाला दशराहा भी बीत चुका था। अपनी-अपनी मनोकामना पूरी होने पर डिहवार के स्थान पर सजे-सजाए मिट्टी के घोड़े चढ़ाकर गाँव के लोग निश्चिंत हो चुके थे।

हथिया नक्षत्र के बाद वर्षा की एक बूँद भी धरती को नसीब नहीं हुई, लेकिन जाड़े की शीतलहर ने अपने स्वभाव में कोई बेईमानी नहीं की। इसलिए धधकती हुई धरती की छाती खेत की दरारों की तरह फटकर छिन्न-भिन्न हो गई थी।

मौसम का रुख देखकर जीवानन काका ने सरस्वती पूजा से तीन दिन पहले पाँच कट्ठे में लौकी की खेती की थी। वैसे खेती का हिसाब जोत-कोर से शुरू हो जाता है, लेकिन किसान खेती के मूल हिसाब में जोत-कोर को अलग रखते हैं और खेत में बीज रोपने से खेती का वास्तविक हिसाब शुरू करते हैं। इसी हिसाब से जीवानन काका ने पाँच कट्ठे खेत में लौकी का बीज रोप दिया। पौधे भी अच्छे जमे। वर्षा न होने से शीत और पाले का रूप बदल गया था, इसलिए लौकी के पौधे उतने प्रभावित नहीं हुए। एक भी पौधा सिकुड़ा नहीं, सभी पूरे खिले-फूले रहे। अपनी खेती के पहले चरण का काम देखकर जीवानन काका मन-ही-मन हिसाब लगाते कि खेत घिरा हुआ है, उस पर समुचित रासायनिक

खाद भी दी गई है। इतना ही नहीं, नीम के बीज के साथ रासायनिक कीटनाशक दवा भी दे दी गई है। इसलिए न जड़ काटे जाने की संभावना है और न तना-पत्ता चाटे जाने की।

जैसे-जैसे जाड़े के दिन कम होते गए, वैसे-वैसे लौकी के पौधों में ऊर्जा आती गई। समय के साथ उसकी बेल सुगबुगाती, मुड़ती और आगे फैलती गई। महीना भी नहीं बीता था, लेकिन बेल फूल की कलियों से भर गई। सुबह-शाम देखने के साथ जीवानन काका एक-दो घंटा खेत में काम भी करते ही थे।

पच्चीस दिन बीत गए। खेत के साथ बेल को भी पानी की प्यास लग रही थी। इसी बीच जीवानन काका के मन में उठा कि बच्चे को यदि ठीक और पोषक आहार नहीं मिलेगा, तो वह रोगी और कमजोर होगा ही।

अपने किसानी जीवन की पूर्णता पर जीवानन काका को भरोसा क्यों न हो? अपना खेत, पानी का अपना साधन और श्रम के लिए अपना शरीर भी उनके पास था। इसलिए जीवन जीने का विश्वास मन में था ही। श्रम ऐसी चीज है, जो मनुष्य को तुष्टि देती है, और वह तुष्टि जीवानन काका में थी।

छब्बीसवें दिन जीवानन काका ने अपनी बोरिंग से लौकी का खेत पटाया। एक ओर मौसम की कोमलता थी, दूसरी ओर प्यासी धरती। अपनी-अपनी औकात के अनुसार बेल ने जोर पकड़ा। पटवन के तीसरे दिन दोपहर में उन्होंने यूरिया खाद भी छिड़क दी। तीसवें दिन फूल और फूल की कलियाँ तारों की तरह पूरे खेत में चमकने लगीं। जैसे कच्चे-पक्के फल, वैसे ही फूल भी पूरे खेत में जगमगा उठे।

आज पैंतालीसवाँ दिन था। जीवानन काका खेत से एक लौकी काटकर घर ले आए। आते ही पत्नी को दरवाजे से आवाज देकर बोले:

“जरा इधर आओ।”

पति की आवाज से सुदामा काकी के शरीर की गति में रत्ती भर भी तेजी नहीं आई। न आने का कारण यह था कि ऐसी आवाज देना कोई एक दिन की बात थोड़े थी, यह तो रोज की बात थी। मतलब हुआ कि मैं दरवाजे पर आ गया हूँ। अपने ढंग से चलती हुई सुदामा काकी दरवाजे पर आईं। पति के हाथ में साफ-सुथरी, पुष्ट लौकी देखकर बोलीं:

“आप अमृत के स्रष्टा हैं!”

पत्नी की आशाभरी, विश्वासपूर्ण बात सुनकर जीवानन काका का मन दहल गया। बोले:

“अच्छी खेती है। ऐसे फलों से खेत भरा हुआ है!”

पति के मुँह से ‘अच्छी खेती’ सुनकर सुदामा काकी के मन में विश्वास ने घर किया। विश्वास आते ही मन खिलकर हँस पड़ा। हँसते हुए बोलीं:

“लक्ष्मी दाहिने हैं!”

पत्नी के मुँह से ‘लक्ष्मी दाहिने हैं’ सुनकर जीवानन काका के मन में अपना लक्ष्य भेदता श्रम उठ खड़ा हुआ। उठते ही श्रमशील गुण का आभास हुआ। आभास होते ही मन ने कहा कि ऐसा गुण आदमी में एक ही दिन थोड़े आता है। वह भी अपने जैसे इलाके में, जहाँ महीने-दो महीने में मौसम करवट बदलता है। हाँ, कुछ हद तक ऐसे इलाके के लिए मान भी लिया जा सकता है, जहाँ बारहों महीने एक ही तरह का मौसम रहता है। लेकिन अपने इलाके में तो आँख बंद करके भी देखेंगे, तो समझ में आएगा कि एक समय धूप वाला होता है, दूसरा दहार का और तीसरा दोनों के बीच का मध्यम समय, जिसमें न पूरी धूप होती है और न दहार की तीखी तपन। जब किसान का सामना तीन रंग के मौसम से होगा, तभी तो उसे समझना पड़ेगा कि धूप का ताप कैसा होगा और दहार का

ताप कैसा। जहाँ तीन गुण वाला मौसम है, वहाँ तीन गुण से नौ गुण और बारह गुण तक बात जा सकती है। इसलिए एक गुण वाली बुद्धि से काम नहीं चलेगा। उस पर यदि बात केवल विचार की होती, तो कुछ देर मान भी लिया जाता। लेकिन जहाँ विचार को काम में ढालने का प्रश्न है, वहाँ जटिलता है ही। जटिलता का कारण केवल मौसम नहीं है। श्रम का ढंग भी तो है। कोई तेजी से कुदाल-खुरपी चलाता है, कोई धीमी गति से, तो कोई मध्यम गति से। वहाँ एकरेखी बात कहना कहाँ तक उचित होगा?

वे बोले:

“हाँ, संयोग अच्छा है।”

बोलने के क्रम में जीवानन काका बोल तो गए, लेकिन तुरंत उनके मन ने अपने ही विचार को घेरते हुए कहा:

“जो काम है, यानी लौकी की खेती, उसका तो केवल एक चरण पूरा हुआ है। रोपने के दिन से फलने के दिन तक का चरण। दूसरा चरण हुआ फल को सुंदर बनाना और तीसरा चरण हुआ उसकी बिक्री। फल बनाना और बिक्री, ये दोनों चरण तो अभी आगे बाकी ही हैं। तब इसे अभी से अच्छा संयोग मान लेना भी उचित कैसे हुआ? यदि आगे के दोनों चरणों में कुसंयोग हो गया तो? तब तो संयोग और कुसंयोग के बीच का बीच ही मानना होगा। यदि ऐसा नहीं होगा, तो बात एकतरफा हो जाएगी न?”

लेकिन मन मान गया कि पति-पत्नी के बीच की ही तो बात है। दूसरे परिवार, दूसरे टोले या दूसरे गाँव की बात थोड़े है कि लोग दोष देंगे। परिवार की बात है, सदा बातचीत होती रहती है। जब तक संयोग अच्छा रहेगा, तब तक कहेंगे कि संयोग अच्छा है। और जब कुसंयोग का आगमन होगा, तब अच्छे के बुरे की ओर खिसकने की बात कहेंगे। इसी बीच सुदामा काकी ने टोक दिया:

"भगवान की अच्छी नजर पड़ी है।"

पत्नी की बात सुनकर जीवानन काका का सुलझता हुआ मन फिर उलझ गया। उलझन यह थी कि सब कुछ तो अपने हुनर और बुद्धि से किया, फिर पत्नी भगवान की बात क्यों बोल रही हैं। लेकिन तुरंत मन मान गया कि सोलह आना मेरे ही लिए बेईमानी की बात थोड़े बोली हैं। आधा तो उनका भी हिस्सा होगा ही, इसलिए पचास पैसे तक की बेईमानी सहन की जा सकती है।

उन्होंने पूछा:

"भगवान की अच्छी नजर पड़ी है या अपनी अच्छी नजर पड़ी?"

इसी बीच सुदामा काकी का मन लौकी के साफ-सुथरे रूप में भटक गया था। भटकना यह हुआ कि जब लोग अपने किए हुए अमृत फल का भोजन करेंगे, तभी न वह राजा हुआ। उस पर यह लक्ष्मी-भंडार का पहला फल था।

इसलिए जीवानन काका की बात सुदामा काकी अच्छी तरह नहीं समझ पाईं। बोलीं:

"आज पहला फल है, इसलिए तड़ुआ-तरकारी भी बनाऊँगी और भुजुआ भी।"

'तड़ुआ-भुजुआ' सुनकर जीवानन काका के मन का विचार भी नीचे उतर आया। उतरते ही बोले:

"कमाकर हाथ में दे दिया, अब आप मालिक हैं। जैसे बनाइए। इसके लिए पहले ही बेकार में मन क्यों भर रही हैं?"

'मन भरना' सुनकर सुदामा काकी समझ गईं कि इनके मन में अच्छी इच्छा है। लेकिन ऐसी इच्छा पूरी करने के लिए वैसी ही कलाकारी भी चाहिए। फिर तुरंत उनका मन बदला। बदला यह कि लौकी जैसी सुकुमार तरकारी दूसरी कौन है, जो कम-से-कम संगत में भी चल जाती

है। केवल नमक और मिर्च के साथ चलने वाली है। यह कोई दूसरी तरकारी थोड़े है। दूसरी तरकारियाँ भी एक तरह की नहीं होतीं। तरह-तरह की होती हैं। कुछ ऐसी होती हैं, जिन्हें पूरे शरीर भर मसाला चाहिए, कुछ ऐसी जिन्हें पेट भर मसाला चाहिए और कुछ ऐसी भी, जो मसाले में ही डूबी रहती हैं।

आज जेठ की पूर्णिमा है। बैशाख-जेठ का भारी लग्नकाल चल रहा है, जिसमें भोज-भात तो होगा ही। जब भोज-भात होगा, तभी साग-सब्जी की जरूरत भी अधिक होगी। जब साग-सब्जी की जरूरत अधिक होगी, तभी उसकी माँग भी बढ़ेगी। जब किसी वस्तु की माँग अधिक होगी, तभी उसमें महँगाई भी आएगी। और जब महँगाई आएगी, तभी पैदावार लाभ की पैदावार बनेगी।

सुबह आठ बजे जीवानन काका चाय पीकर खेत गए। खेत में लौकी देखकर मन कसक उठा। कसक यह थी कि ऐसे अनुकूल समय में भी उपज नष्ट हो रही है। खेत की पच्चीस प्रतिशत लौकियों की भी बिक्री नहीं हुई। खेत में फैली पड़ी लौकी बूढ़ी-सी हो गई थी। इससे बेल की बढ़वार भी ठिठक गई और बेल में फल लगे रहने के कारण आगे फलना भी कम हो गया।

मेड़ पर बैठकर जीवानन काका सोचने लगे कि ऐसा क्यों हुआ। लौकी जैसी सुपरिचित वस्तु, जिसे सब जानते हैं कि वह सुपाच्य होने के साथ गुणकारी भी है। घर-घर में उसका उपयोग होता है। फिर उसका ऐसा दिन कैसे हुआ कि सब खेत में ही पड़ी-पड़ी बूढ़ी होकर नष्ट हो गई?

जीवानन काका के मन में अपने काम को लेकर शंका हुई। शंका दो तरह की थी। पहली फल, यानी लौकी को लेकर, और दूसरी लोगों की माँग को लेकर। लौकी खाने की वस्तु है। घर-घर के लोग खाते ही हैं। इसलिए माँग का जो बाजार है, वह सिमटा हुआ नहीं, फैला हुआ है। इसलिए माँग का विचार जीवानन काका के मन में पीछे चला गया और

फल का विचार आगे आ गया। फल का विचार आगे आने का कारण यह भी था कि वस्तु चाहे इस युग की हो या उस युग की, प्रतियोगिता वस्तुओं के बीच ही होती है। इसलिए मन में प्रबल आशंका हुई कि कहीं वस्तु ही तो खराब नहीं हो गई।

खराब वस्तु का विचार मन में जागते ही जीवानन काका मेड़ से उठकर खेत में उतर गए।

उन्होंने खेत के पहले पौधे की बेल पर नजर डाली। पाँच फल अच्छे और पूरे आकार के थे, बाकी बेल के अगले फल टेढ़े-मेढ़े, छोटे और अधूरे। पहले पौधे के फल देखकर जीवानन काका ने मन-ही-मन पूरे खेत की ओर देखा। पाँच कट्ठे में खेती है। डेढ़ सौ पौधे रोपे हैं। एक पौधे में पाँच अच्छे फल हुए। डेढ़ सौ पौधों में साढ़े सात सौ फल हुए। यदि दस रुपए में भी बिकेगा, तो साढ़े सात हजार तो वैसे ही हुए। पाँच कट्ठे में साढ़े सात हजार कम नहीं, वह भी अपने यहाँ की रोगग्रस्त होती जमीन को देखते हुए। वैसे उसी लौकी के भीतर जो बीज है, यदि उसे बीज के रूप में पैदा किया जाए, तो वह लाखों का होगा। बाजार में एक रुपए से लेकर तीन रुपए तक प्रति बीज का दाम है। लेकिन यहाँ बीज बनाने की बात नहीं, तरकारी की बात है, लौकी की उपज की बात है।

साढ़े सात हजार रुपए का हिसाब जीवानन काका के मन में आते ही दूसरा विचार कूद पड़ा। जिसे गरमा फसल कहते हैं, यह तो केवल वही हुआ। बाकी बरसात और जाड़ा बचा ही है। जब एक मौसम में एक कट्ठे की उपज पंद्रह सौ रुपए हुई, तब एक बीघे की हुई तीस हजार। तीन मौसम का अर्थ हुआ नब्बे हजार। यदि एक बीघे की उपज नब्बे हजार होगी, तभी खेती की आगे बढ़वार होगी। दस-बीस बीघा खेत वाले लोग शहर की सड़क पर घूम रहे हैं। अपनी लौकी की परिस्थिति और गाँव-समाज के बीच जो हवा बन गई थी, उस हवा में जीवानन काका का मन भटकने लगा। भटकते-भटकते मन इस तरह स्थिर हुआ कि कोई बेचैनी

बची ही नहीं।

पीछे लौटकर देखते ही जीवानन काका को याद आया कि अभी तक नाश्ता भी नहीं किया है। बेकार ही किस लाभ-हानि के झमेले में मन को भटका रखा है। मन सँभल गया।

मन सँभलते ही जीवानन काका घर की ओर चल पड़े। मन में रह-रहकर लौकी की पीड़ा की टीस लगती थी, लेकिन जैसे पीड़ा की टीस, वैसे पेट की टीस भी रहती ही है। विचार से जीवानन काका अपने मन को बार-बार संतोष देते रहे कि मनुष्य कर्म का भागी है, जैसा गीता भी कहती है। अपने कर्म में कहाँ कोई चूक देखता हूँ? यदि कर्म में चूक रहती, तो ऐसी उपज कैसे होती? लेकिन उपज होने के बाद भी यदि समुचित लाभ नहीं हुआ, तो दोष कहाँ है?

जब बाजार की ओर देखते, तो सब कुछ अनुकूल ही अनुकूल लगता। ऐसा लग्न-पाती का समय है कि माँग ही माँग होनी चाहिए थी, लेकिन वैसा नहीं हुआ। इसलिए जीवानन काका के मन की सुर्खी में मलिनता का अँधेरा आ ही जाता।

दरवाजे पर आते ही उनकी नजर पत्नी पर पड़ी। नाश्ते का समय टलते देखकर सुदामा काकी बार-बार दरवाजे पर आ-आकर देख रही थीं कि वे आए या नहीं।

जैसे ही जीवानन काका की नजर सुदामा काकी पर पड़ी, वैसे ही सुदामा काकी की नजर भी जीवानन काका पर पड़ी। नजर पड़ते ही सुदामा काकी ने चेहरे की सुर्खी से आँक लिया कि मन में कोई-न-कोई कचोट जरूर है। लेकिन कुछ पूछने से पहले अच्छा होगा कि नाश्ते की चर्चा की जाए।

सुदामा काकी बोलीं:

“कौन-से मुलुक चले गए थे कि नाश्ता भी छोड़ दिया?”

जीवानन काका वैसे आदमी नहीं थे कि सामने प्रश्न कुछ आए और तमतमाए या भटके मन से उत्तर कुछ और दें। सामने नाश्ते का प्रश्न था, इसलिए मन की सारी उलझन को मन के झोले में रखते हुए बोले:

“किसी दूसरे मुलुक थोड़े गया था। था तो अपने ही मुलुक में, लेकिन...”

‘लेकिन’ कहकर जीवानन काका इस तरह ठिठक गए, जैसे दुख से वाणी बंद हो गई हो। कारण यह था कि मन में उठ गया था कि पत्नी तो मेरे ही आश्रय में हैं, लेकिन आशा का रास्ता ही कट गया, तब तोष-भरोस की बात क्या कहूँ? जीवानन काका के मन की मलिनता और बढ़ती गई, जिसे सुदामा काकी उनके बदलते रूप से आँक रही थीं। मन-ही-मन यह भी उठ रहा था कि पीड़ित से पीड़ा की बात पूछना भी तब तक अच्छा नहीं, जब तक पीड़ित अपनी पीड़ा को जन्म नहीं दे देता। इसलिए अपने पत्नीत्व का विचार करते हुए सुदामा काकी बोलीं:

“कहिए! नाश्ते का समय निकल गया। भूखे-प्यासे मन भी उलट गया होगा। पहले अन्न-जल कर लीजिए। बाद में दुनियादारी की ओर देखेंगे।”

पत्नी के विचार ने जीवानन काका को प्रभावित किया। वे हाथ-पाँव धोने के लिए नल की ओर बढ़े।

हाथ-पाँव धोकर आँगन में आते ही पत्नी की नाश्ते की व्यवस्था उन्हें अन्य दिनों से कुछ अधिक आकर्षक लगी। लेकिन जीवानन काका की अपनी आशा का कटा हुआ रास्ता मन को उठने ही नहीं दे रहा था। बार-बार मन में उठ जाता था कि अपने हारे हुए जीवन की बात उनसे कैसे कहूँ? अपना टूटता जीवन देखकर बेकार ही उनका मन भी कड़वा हो जाएगा।

इसलिए जीवानन काका अपने मन की पीड़ा को अपने ही मन में

मोड़-मोड़कर रखना चाहते थे।

जैसे तपे हुए आदमी का पाँव सरोवर में पड़ते ही जलन और शीतलता के बीच संघर्ष उठ जाता है, जैसे ठिठुरे हुए आदमी को आग मिलते ही ताप और जलन होने लगती है, वैसे ही आधे से अधिक भोजन कर लेने के बाद सुदामा काकी के मन में जीवानन काका को लेकर प्रश्न उठने लगा। मन मानने लगा कि अब जीवन की लीला को आगे बढ़ाया जा सकता है। वे बोलीं:

"सजमन के खेत का क्या हाल है?"

पत्नी की बात सुनकर जीवानन काका के मन में वैसा ही हुआ, जैसे कोई परदेशी पत्नी की अनेक मनोकामनाएँ लेकर परदेश जाता है और कमाकर लौटते समय गाँव की राह में उसकी सारी कमाई या तो कट जाती है या छीन ली जाती है।

मन में यह भी उठ रहा था कि गीता में कर्म के आगे फल को कृष्ण ने इसी कारण छिपाकर रखा कि कर्ता स्वयं समझे।

जीवानन काका बोले:

"हाल क्या रहेगा, बेहाल है!"

पति के मुँह से 'बेहाल' सुनते ही सुदामा काकी चौंक गईं। चौंकी इसलिए कि यदि पति का हाल बेहाल है, तो पत्नी का हाल सुहाल कैसे रह सकता है? लेकिन क्या बेहाल है, यह तो सुनने के बाद ही समझा जाएगा। उन्होंने पूछा:

"क्या बेहाल है?"

पत्नी के पूछने से जीवानन काका के मन की धुकधुकी तेज होने लगी। धड़कते मन से बोले:

"पहले शांत होकर नाश्ता करने दो। बाद में दरवाजे पर बैठकर सब कुछ अच्छी तरह कहूँगा।"

‘सब कुछ बाद में’ सुनकर सुदामा काकी के मन में भी धुकधुकी उठ गई। मन में उठा कि ‘सब कुछ’ का मतलब एक ही बात नहीं, अनेक बातें हुईं। जब मनुष्य अनेक विचारों या अनेक समस्याओं से घिर जाता है, तभी वह बेबस होने लगता है। जब कोई बेबस होता है, तभी उसकी स्वच्छंदता मिटने लगती है, जो मृत्यु की कगार तक पहुँचा देती है। लेकिन वे कुछ नहीं बोलीं। मन में बार-बार घूम गया कि मनुष्य यदि चिड़िया की तरह स्वच्छंद होकर आकाश में उड़ नहीं सका, तो उसका जीवन ही क्या और जीना ही क्या? लेकिन वे चुप इसलिए हो जातीं कि जितना मन-ही-मन खोदतीं, उतना ही उलझती जातीं। एक तो वे अपने मन से ही पीड़ित हैं और उस पर मैं भी ऊपर से लाद दूँ, यह भी कैसा होगा? इसलिए सुदामा काकी सहमी रहीं।

नाश्ता करने के बाद जीवानन काका हाथ-मुँह धोकर, लोटा रखकर दरवाजे की चौकी पर बैठे और पत्नी को आवाज देते हुए बोले:

“जरा इधर आओ।”

सुदामा काकी समझ गईं कि पति-पत्नी के बीच का खेल यही तो है कि जब पति पीड़ित हों, तब उनके दुःख के सामने यदि पत्नी सुख देने वाली पीड़िका बनकर उपस्थित न हो, तब वह पति की पत्नी ही क्या। उसी तरह पत्नी की पीड़ारहित अवस्था भी है। लेकिन पीड़ारहित अवस्था की भी दो स्थितियाँ हैं, बड़े के लिए छोटे का त्याग और छोटे के लिए बड़े को धकियाना। यह विचारणीय विषय है कि पति-पत्नी के स्तर में एकत्व होने के बाद भी ऐसा होता है। फिर भी उसमें बड़ी खाई है, छिपा-ढँका पक्ष है। अपने नए चेहरे की छमछमी बनाते हुए सुदामा काकी सामने खड़ी हुईं और बोलीं:

“भगवान किसी पर दाहिने हैं, तो हम दोनों प्राणियों पर भी हैं।”

पत्नी की बात जीवानन काका के कान में पड़ते ही मन की बात

जैसे ठिठक गई। वे बोले:

"वह कैसे?"

पति का प्रश्न सुनकर सुदामा काकी के मन में हुआ कि अब छोर पकड़ में आ गया। बोलीं:

"बिछावन पर सुबह यही सोच रही थी कि अपने से अधिक उम्र के लोग समाज में, गाँव में कितने बचे हैं और अपने कितने संगी-साथी दुनिया छोड़ चुके हैं।"

सुदामा काकी की बात सुनकर जीवानन काका और डूबने लगे। डूबते हुए बोले:

"नाम याद हैं?"

सुदामा काकी बोलीं:

"एक-दो रहते तब न, वे तो दर्जन-सोड़े में हैं।"

"दर्जन-सोड़े का ठिकाना है?" जिज्ञासु चिड़िया की तरह जीवानन काका बोलकर मुँह खोले ही रह गए।

मुस्कुराते हुए सुदामा काकी बोलीं:

"जैसे कोई अज्ञानी औरत अपने श्रम से गाय पालकर दूध पैदा करती है और पाव-पाव बेचकर घर की दीवार पर डाँट खींच-खींचकर अपना हिसाब जोड़ती है, उसी तरह मन की डायरी में मैंने भी लिखकर रखा है।"

और जिज्ञासु होकर जीवानन काका बोले:

"जरा मुँहजबानी सुना दो कि अपना भी ठिकाना करूँ।"

सुदामा काकी बोलीं:

"अधिक उम्र वाले तो दर्जन-सोड़े में नहीं हैं, लेकिन गिनती भर जरूर हैं।"

जीवानन काका और उत्सुक होते हुए बोले:

“संगी-साथी?”

सुदामा काकी बोलीं:

“संगी-साथियों की तो दुनिया ही है, लेकिन वह हिसाब दर्जन-सोड़े में नहीं किया जा सकता। फिर भी उसका आनुपातिक हिसाब तो है ही।”

उत्तेजित होते हुए जीवानन काका बोले:

“वही सुनाओ।”

अपने महत्त्व का भार सँभालते हुए सुदामा काकी बोलीं:

“दूसरों के पीछे बेकार कितना भटकेंगे, अपने पीछे को पीछे कीजिए।”

धारा में बहती हुई कोई चीज जैसे किनारा लगते-लगते किनारे लग जाती है, वैसे ही जीवानन काका का बहता हुआ मन किनारे लगा। बोले:

“तीन महीने का जीवन हिल गया।”

पति की बात सुदामा काकी अच्छी तरह नहीं समझ पाईं। इसलिए समझने का रास्ता पकड़ते हुए बोलीं:

“वह क्या?”

पत्नी का ‘वह क्या’ सुनकर जीवानन काका के मन का ढँका परदा हट गया। हटते ही उन्होंने पत्नी की ओर नजर उठाई। नजर उठते ही मन में विश्वास जगा कि अभी कैसी भी अच्छी या बुरी बात पचा सकने योग्य उनका मन तैयार है। सँभलते हुए उन्होंने कहा:

“सजमन की खेती डूब गई!”

‘सजमन की खेती डूब गई’ सुनते ही सुदामा काकी का विश्वासभरा मन एकाएक विचलित होने लगा। वैसे वह बहुत विचलित

नहीं हुआ था, लेकिन जीवानन काका की दृष्टि में आ गया। दोहराते हुए बोले:

"बहुत आशा से खेती की थी, लेकिन उस पर पानी पड़ गया!"

पति की बात सुनकर सुदामा काकी का मन ऊपर से नीचे उतरा। उतरने का कारण यह था कि कहाँ मन डूब रहा था और कहाँ तुरंत केवल पानी ही फेर दिया। जो वे समझ रही थीं, बात वैसी नहीं थी। उससे कम थी। लेकिन कितना कम और कितना कम हुआ है, यह तो बिना कुरेदे नहीं समझा जाएगा।

कुरेदते हुए बोलीं:

"वह क्या? कोई ठोस बात लगती तो नहीं।"

पत्नी का विचार सुनकर जीवानन काका का मन पोखर के पानी की तरह स्थिर हुआ। लेकिन तुरंत मन में उठ गया कि जीवन तो धारा है, यह पोखर के पानी की तरह स्थिर कैसे हो सकता है। जीवन गतिशील है। गति ही गति में चलता है। उसी गति में तो दुर्गति की संभावना बढ़ गई है। लेकिन यह बात पत्नी किस रूप में समझेंगी?

अपनी मजबूरी दिखाते हुए जीवानन काका बोले:

"यही तो अच्छी तरह नहीं समझ पा रहा हूँ कि गुणकारी चीज गुणहीन कैसे हो गई।"

वैसे सुदामा काकी के बौद्धिक स्तर से जीवानन काका परिचित थे, लेकिन भ्रमजाल में भ्रमित करने के लिए अपनी सीमा से बढ़कर बोल रहे थे। इसी बीच सुदामा काकी बोलीं:

"जब आप ही नहीं समझ पा रहे हैं, तब मुझे कैसे विश्वास दिलाएँगे?"

पत्नी की बात से जीवानन काका के मन में धैर्य जगा। बोले:

"अब तो चाय-पान में भी कटौती करनी पड़ेगी!"

एक तो चाय-पान जैसी मामूली वस्तु, उस पर उसमें भी कटौती होगी, तब और जो बड़े-बड़े काम हैं, वे कैसे चलेंगे? सुदामा काकी की आँखों में चिंतन की मजबूत रेखा उतर गई। आँख कसैली होने लगी। बोलीं:

"तब?"

'तब' सुनते ही जीवानन काका समझ गए कि पत्नी समाधान का रास्ता देख रही हैं। इसलिए निर्णय के रूप में नहीं, तात्त्विक विवेचन के रूप में जितनी अच्छी तरह समझाएँगे, उतनी अच्छी तरह वे समझेंगी। और जितनी अच्छी तरह समझेंगी, उतना परिवार और परिवारजन का आदर करेंगी। कारण यह कि दोनों के बीच इतनी सीमा बँधी ही है कि पति मैं ही रहूँगा और पत्नी वही रहेंगी। इस बीच यदि कुछ नमकीन या फीका हो गया, तो जीवन के लिए वह छोटी-सी बात ही हुई न।

अपने स्तर से, वैचारिक नहीं, भाषायी स्तर से उतरकर जीवानन काका बोले:

"अब तक मैं भी और शायद तुम भी यही समझती रही हो कि लौकी गुणकारी तरकारी है, इसलिए आरंभ से खान-पान के चलन में है। लेकिन भोज-काज में लौकी की माँग कम हो रही है। मतलब भोजन के विन्यास से वह किनारे हो रही है, जिससे उसकी माँग घट गई है।"

परती खेत में काट-छाँट के बाद जैसे कोई फसल लहलहा उठती है, वैसे ही सुदामा काकी को भी हुआ। अपना हाथ दिखाते हुए बोलीं:

"कितने भोज-काज में लौकी की तरकारी इसी हाथ से बनाई है, इसका ठिकाना नहीं। लेकिन इस साल जो पाँच-सात भोज खाए, उनमें कहीं लौकी के दर्शन नहीं हुए!"

पत्नी का विचार सुनकर जीवानन काका संतोषपूर्ण शब्दों में बोले:

“अभी जीवित हैं, इसलिए जीते रहेंगे। लेकिन जीवन भर जिसे, यानी लौकी को, अच्छा समझते आए, वह इस तरह खराब क्यों बन गया? क्या उसकी गुणशक्ति कम हो गई या खाने वालों के मन का चस्का बढ़ गया?”

पति का विचार सुनकर सुदामा काकी का मन सिमटकर सहम गया। पत्नी के रूप में अपने को देखते हुए बोलीं:

“जब साथ में जीवन-मरण है, तब हवा-बिहाड़ से डरेंगे तो जी पाएँगे?”

मुस्कुराते हुए जीवानन काका बोले:

“यही तो कहा।” ❑

परिस्थिति से समझौता

☰

बिछावन से उठते ही लाल काका के मन में उठा, 'आज समझौता कर ही लूँगा, नहीं तो जीवन के दिन घटेंगे।'

मन-ही-मन लाल काका विस्मित होने लगे कि जब दुनिया का अन्न-पानी खाता-पीता हूँ, तब यदि कुछ करूँगा नहीं, तो कोई कुछ कहे या न कहे, लेकिन अपना विवेकी मन तो कहेगा ही कि बेईमानी की। लेकिन किसके लिए की? यहाँ आकर वे अटक गए। विस्मित हुए लाल काका का मन रात की ओर चला गया। दुनिया दो भूमंडलों में बँटी है। एक है रात, यानी अँधेरा, और दूसरा है दिन, यानी उजाला। वैसे रात की ओर लाल काका का मन बढ़ने का दूसरा कारण भी था। वे अभी-अभी बिछावन से उठे थे। रात की ओर नजर बढ़ते ही सोते समय की जागी हुई अवस्था याद आ गई। उन्हें याद आया कि बिछावन पर पड़ते ही, नींद आने से पहले, यही विचार तो मन में उठा था कि कल सावन का पहला दिन भी है और सोमवार होने से सोमवारी भी है। आज से ही यात्री लोग सुल्तानगंज में जल भरकर बाबा बैजनाथ पर चढ़ाएँगे। सुल्तानगंज के घाट का विधिवत उद्घाटन भी आज हो ही गया।

सावन जैसे सुहावने महीने का सुहावनापन आते ही लाल काका के मन में बेचैनी जागने लगी। बेचैन मन धीरे-धीरे विषाद से भरने लगा, जिससे विचार भी छटपटाने लगे। इसी बीच उनकी पत्नी, यानी लाल काकी, दरवाजे पर पहुँचीं।

लाल काका की कसमसाहट देखकर लाल काकी मन-ही-मन सोचने लगीं कि आज ये ऐसा क्यों कर रहे हैं। दूसरे दिनों में कितने अच्छे, शांत चित्त रहते थे, लेकिन आज अशांत-से क्यों दिखाई पड़ रहे हैं?

अथाह पानी में जैसे धारा पार करने वाला बटोही अपने को असहाय समझते हुए धारा पार करने का उपाय सोचता है, उसी तरह लाल काकी भी यह सोचकर सामने चुपचाप खड़ी रहीं कि सामने रहने पर कुछ-न-कुछ बोलेंगे ही, तभी हाँ-हूँ करके कुछ पूछूँगी।

लाल काकी को अस्थिर-सी खड़ी देखकर लाल काका बोले:

“सुबह की चाय बनाने वाला दूध है ही, ले जाओ और चाय बनाओ।”

लाल काका रोज ढाई बजे भोर में चाय बनाकर पीते थे और तीन बजे भोर से अपने काम में लग जाते थे, लेकिन आज ऐसा नहीं हुआ। बूढ़े-बुजुर्गों का कहना है कि आर्द्रा नक्षत्र धरती को भर देता है। इस साल भी उसने अच्छी तरह भर ही दिया।

पानी की अधिकता से अनेक समस्याएँ उपस्थित हो गई हैं, जिससे सबके जीवन में धक्का-मुक्की चल रही है। कोसी इलाके जैसी स्थिति बन गई है। किसी का घर गिरा है, किसी का धान का बीज बह रहा है। किसी के पशु-मवेशी की घास डूब गई है, तो किसी के घर-आँगन में पानी फैला है।

लाल काकी बोलीं:

“क्यों, भोर में चाय नहीं बनाई, जो दूध बचा हुआ है?”

लाल काका का मन भारी-सा लग रहा था, इसलिए बात को आगे न बढ़ाकर सीधे बोले:

“मन घबरा रहा है। जब तक चाय नहीं पीऊँगा, तब तक ठीक नहीं होगा।”

‘मन घबरा रहा है’ सुनते ही लाल काकी चौंक गईं। चौंकी इसलिए कि छोटी बीमारी में भी मन घबराता है और बड़ी बीमारी में भी घबराता ही है। इसलिए थोड़ा और खोलने के विचार से लाल काकी बोलीं:

“चाय में अदरक डालकर बनाऊँ या तेजपत्ता, इलायची या तुलसी का पत्ता डाल दूँ?”

लाल काका का मन दबा हुआ था ही। उन्होंने सोचा कि बेकार में यदि इन चारों चीजों, यानी अदरक, तेजपत्ता, इलायची और तुलसी के पत्ते के गुण-दोष कहने लगूँगा, तो चाय में और देर होगी। बोले:

“कुछ भी मत डालना। सीधी जैसी चाय होती है, वैसी बनाकर लाओ।”

लाल काकी के मन में उठा कि पूछूँ, जब मन सामान्य रहता है और जब मन असामान्य रहता है, तब दोनों में अंतर है या नहीं। जब दोनों में अंतर रहेगा, तभी उसके खान-पान और बात-विचार में भी अंतर होगा। यदि ऐसा नहीं होगा, तो पति को अस्पताल जाते समय पत्नी सादा भोजन और जरूरी सामान का इंतजाम क्यों करती है? क्यों नहीं कहती कि बाजार से सोने की माँगटीका लेते आइएगा? परिस्थिति के कारण ही, अपने घर में नमक नहीं रहने पर भी, पत्नी पति से नहीं कहती और सोच लेती है कि जब अड़ोसी-पड़ोसी से नमक का उधार-पैंच चलता ही है, तब अभी बीमारी की परिस्थिति न समझकर नमक में बेकार पैसा खर्च करना कितना ठीक होगा। पति के आदेश को माना जाए या नहीं, इसी विचार में लाल काकी का मन उलझ गया। मन में साफ नाच रहा था कि जब मन सोलह आना अच्छा रहता है, तब जितना खाते-पीते हैं, और जब मन थोड़ा अच्छा या थोड़ा बुरा रहता है, तब के खान-पान में तो कमी-बेसी हो ही जाती है।

लेकिन तुरंत लाल काकी के मन ने उन्हें सँभाल लिया कि बेकार

में यदि दोनों प्राणियों में मगजमारी करूँगी, तो यह ठीक नहीं होगा। उन्हें जो सूझा, वह उन्होंने कहा और मैं जो ठीक समझती हूँ, वह करूँगी। उन्होंने कहा कि चाय में न अदरक डालना, न तेजपत्ता, न इलायची और न तुलसी का पत्ता। तब अब बेकार में उनसे कुछ क्यों पूछूँ? इतना मानने में कोई एतराज भी तो नहीं है। अपनी सूझ से यदि चाय में अदरक डाल दूँ और देह की चाह तुलसी-पत्ते की हो, तो बेकार में दु:ख पर दु:ख बढ़ाना होगा। उससे अच्छा होगा कि उन्हीं के विचार में जरा चायपत्ती ही अधिक डाल दूँ और थोड़ा कसकर आँच लगाकर गाढ़ी उबाल भी दे दूँ।

मन के मानते ही लाल काकी आँगन की ओर चाय बनाने चली गईं।

लाल काकी के पास से हटते ही लाल काका के मन में खीझ उठी। सबकी जड़ यही है। यही काम से विमुख करने का कारण है। चौबीस घंटे के दिन-रात में तीन घंटे का क्या महत्त्व है, यह तो महत्त्व जानने वाला ही समझ सकता है। सब कैसे समझ पाएँगे?

मन-ही-मन क्रोध से लाल काका कसैले होते जा रहे थे, लेकिन बोलते क्या और कहते किससे। जिसे कहना चाहते थे, वह तो सुबह सोने वाली ही हैं। उन्हें क्या मालूम कि सुबह का जागरण क्या होता है। होता भी तो ऐसा ही है कि सावन मास में कोई गेरुआ कपड़ा बाँधकर खेत में धान रोपते हुए बोल बम करता है, तो कोई बाढ़ में गिरे हुए घर के नीचे बेटे को दबा देखकर चीख मारता है। महीना तो सावन ही है। सुहावन दोनों के लिए है।

इसी बीच लाल काकी चाय लेकर पहुँचीं।

पत्नी के हाथ में चाय देखकर लाल काका का मन और तरंगित होने लगा, लेकिन मन की तरंग को रोकते हुए लाल काका सोचने लगे कि एक तो पेड़ से गिर रहा हूँ, उस पर यदि डाल-डाल से टकराते हुए

गिरूँगा, तो और अधिक चोट लगेगी। इससे अच्छा होगा कि मन को मारकर आगे की ओर सिर झुका लेना होगा।

मन की मर्जी मानते हुए लाल काका ने झट से चाय का गिलास पत्नी के हाथ से लिया। चाय का रंग देखकर मुस्कुराते हुए बोले:

“ऐसी ही चाय तो चाहता हूँ कि लगते ही मन खनककर सामान्य हो जाए।”

अपनी बड़ाई सुनते ही लाल काकी गर्व से बोलीं:

“इस बार जो चायपत्ती लाई हूँ, वह बहुत अच्छी है। पहली पत्ती जितनी डालने पर रंग पकड़ती थी, उसकी आधी डालने पर देखिए, कैसी रंगदार चाय बनी है। अब पीने में कैसी लगेगी, यह तो आप ही जानेंगे।”

वैचारिक दृष्टि से लाल काका का हटता हुआ संबंध लाल काकी के मन से फिर सटने लगा। उस सटान के पास पहुँचकर लाल काका का मन बुदबुदाया:

“जीवन तो जीवन है। जीवन को जीवन बनाकर जिएँगे, तभी न जीवन हुआ।”

लाल काका का विचार लाल काकी अच्छी तरह नहीं समझीं, लेकिन बार-बार जीवन का उच्चारण होने से ‘जीवन’ तो समझ ही गईं। जीवन को समझकर लाल काकी बोलीं:

“शायद चाय गुणकारी हुई है, इसलिए मुँह की रौनक बदल रही है।”

लाल काकी की बात लाल काका को जितनी ललचाने वाली लगनी चाहिए थी, उतनी नहीं लगी। कारण यह था कि पत्नी पर उठा क्रोध अब भी भीतर बना हुआ था। लेकिन एक ही जगह हैं और एक ही जगह रहना भी है, इसलिए थोड़ा भले-बुरे के बीच समझौता करते हुए चलना ही अच्छा होगा। तब तो तीन घटनाएँ हुईं कि काम की जो बात थी, वह मर

गई। लेकिन उस मरे हुए काम को भी तो जीवित किया ही जा सकता है। नहीं एक दिन में तो दो दिन में, नहीं दो दिन में तो तीन दिन में, लेकिन उतने समय के काम को पूरा तो किया ही जा सकता है। जब काम की पूर्णता होगी, तभी जीवन में भी पूर्णता आएगी। हाँ, वह तो करने से आएगी ही। लाल काका के मन में जीवन के प्रति थोड़ी जिज्ञासा जगी। जब किसी के मन में जिज्ञासा जगती है, तभी आशा की आस आती है। आशा की आस मन में जगते ही लाल काका के विचार में उठा कि भूल-चूक का निवारण चुपचाप रहकर करना ठीक नहीं। जो भूल-चूक हुई, वह तो हो ही गई। अब न वह झगड़ने से लौटेगी और न बिगड़ने से। लेकिन आगे के जीवन में ऐसा न हो, इसके लिए चेताकर कहना तो जरूरी है ही।

तब तक लाल काका भी चाय पी चुके थे और लाल काकी भी आँगन जाकर चाय पी चुकी थीं। चाय पीकर दरवाजे पर आते ही लाल काका ने लाल काकी से कहा:

"आज की प्रभात बेला आपने बिगाड़ दी, लेकिन आगे ऐसा न हो।"

जैसे बिना समझी हुई गलती सामने पड़ने पर आदमी अकबका जाता है, वैसे ही लाल काकी अकबकाने लगीं। मन-ही-मन पीछे लौटकर देखतीं, तो कुछ सामने पड़ता ही नहीं था कि समझतीं, कौन-सी भूल-चूक हुई। लेकिन पति के विचार का दबाव तो समझ ही गईं कि जरूर कुछ भूल-चूक हुई है। बोलीं:

"मुझे नहीं दिख रहा कि कौन-सी भूल-चूक हुई।"

पत्नी की बात सुनकर लाल काका के मन में हुआ कि ऐसा भी तो संभव है कि धोखे-धोखे में कुछ हो गया हो, जो वे स्वयं नहीं समझ पा रही हैं। लेकिन मुझे जो आघात हुआ, वह तो मैं जानता ही हूँ। इसलिए

क्यों न कह ही दूँ। ऐसा भी तो संभव है कि एक साथ रहते हुए भी दूसरे के काम की विविधता दूसरा नहीं समझ पाता।

लाल काका बोले:

"अपने काम के साथ-साथ समय पर भी ध्यान रखना चाहिए। यदि समय पर ध्यान नहीं रहेगा, तो ऐसा ही होता रहेगा, जैसा हुआ।"

जैसे रास्ते के किनारे चौहद्दी बाँध देने से रास्ते का सिरा नहीं बनता, वैसे ही लाल काका की बात सुनकर लाल काकी को लगा। मन में भूल-चूक समझनी थी, लेकिन भूल-चूक की चौहद्दी में ही लाल काकी भटक गईं। इससे अकबकाए हुए आदमी की तरह अकबकाते मन से बोलीं:

"वह कैसे?"

पत्नी का प्रश्न सुनकर लाल काका अथाह समुद्र में डूबने लगे। उगते-डूबते मन में उठा कि समय तो लोगों के जीवन को बदल रहा है। यह बात न मैंने कभी उन्हें समझाई और न वे स्वयं समझ पाईं। इसमें दोष अपना भी नहीं है, यह भी तो नहीं कहा जा सकता। हाँ, यह बात भी गाँव-घर की स्त्रियों के बीच जीवित है कि वे महत्त्वहीन विचारों और कामों में भी अधिक समय लगा देती हैं। देखते ही हैं कि एक स्त्री जैसे दूसरी के सात पुरखों को सात मिनट में उखाड़-पछाड़कर रख देती है, वैसे ही दूसरी भी दूसरी को। गाँव-गाँव में दस-बीस मोटरसाइकिल हो गई हैं, जो प्रतिदिन हजारों किलोमीटर घूमती हैं। इससे कुछ क्षेत्रों की घटना-घटनी तो जानकारी में आती ही है। वह समाचार गाँव में टोले-टोल, घर-घर पहुँच ही जाता है। और सबमें यह जिज्ञासा होती ही है कि कान अच्छी बात सुनें, नई बात सुनें। आँखों को भी नया रूप और नया गुण देखने की लालसा रहती ही है। उसी तरह मुँह को भी नई बात और नए काम की बात बोलने की जिज्ञासा रहती है।

घर-घर तो नहीं, लेकिन टोले-टोल दस-पाँच टीवी भी हो ही गए

हैं। उनमें तरह-तरह के कार्यक्रम हैं। सुकुमार जीवन जीने की इच्छा सबमें है ही। इससे श्रम की गुणवत्ता में कमी आई है। कमी आ जाने से लोग जरूरत से अधिक समय गप-सप में लगा रहे हैं। इतना ही नहीं, गाँव-घर से लेकर दुनिया भर के समाचार अब क्षण-मिनट में फैल जाते हैं। लोगों का तो अपना-अपना जीवन है। उस पर यदि किसी घटना में परिस्थिति के कारण आकर्षण भी होता है और विकर्षण भी, तो उसका प्रभाव अलग पड़ता है। जैसे परिवार या समाज में किसी व्यक्ति की मृत्यु साँप के काटने से हुई हो। लेकिन जिससे विकर्षण होता है, उसकी उम्र भी वैसी ही है जैसी आकर्षण की है। भले ही एक दिन नहीं, दिन-दिन उसे बुरा समझकर टालते रहें, लेकिन उसने भी मन और याददाश्त में जगह बना ही रखी है। देश-देश के समाचारों में जब अफ्रीका के विषैले साँपों का समाचार किसी पत्रिका में, टीवी पर या कंप्यूटर और इंटरनेट के माध्यम से देखते या पढ़ते हैं, तो ऐसे समाचार को तुरंत छोड़ भी नहीं सकते। उसी तरह यदि परिवार में बाढ़ या भूकंप की घटना घटित हुई हो और समुद्र के किनारे की लहर या जापान का भूकंप सामने आए, तो वैसे लोगों के लिए परिस्थिति बन ही जाती है, जो उससे आक्रांत हुए हों। यह तो केवल भौगोलिक पक्ष हुआ, इसके अतिरिक्त भी बहुत कुछ है।

एक और बात लीजिए। अतिथि-सत्कार का महत्त्व। जो दिन-रात के वक्ता हैं, उनके अपने डेरे की कोठरी में दिन भर ताला झूलता रहता है। तब वे अपनी संस्कृति की रक्षा कैसे कर सकते हैं, यह अपने को छोड़ दूसरा अच्छी तरह समझ ही कैसे सकता है? उसी तरह पुरुष-नारी के शरीर-कर्म और काम-काज का सामंजस्य न हो, तो पुरुष-नारी के बीच दूरी बनना स्वाभाविक है। लेकिन बराबरी की हवा में दोनों, यानी पति-पत्नी, बह रहे हैं। दोनों प्राणियों को अपना जीवन स्थापित करने का अपना मौलिक विचार और मौलिक अधिकार भी है। कैसा जीवन बनाकर चलना चाहते हैं, यह तो अपना ही कर्तव्य हुआ। कोई स्थिर

जीवन बनाकर स्थिरता से जीना चाहता है और कोई सदा दौड़ते हुए चलता है। इसलिए दौड़कर चलने वाले का चित्त अस्थिर नहीं रहता, यह भी तो नहीं कहा जा सकता। यह तो अपने-अपने जीवन की साध है।

यहाँ आते ही लाल काका का विचार ठिठक गया। वे गुम हो गए। कुछ देर बाद गुमी तोड़ते हुए बोले:

"मन में कुछ विचार घूम रहा है। वह बिना बोले गले नहीं उतरेगा।"

पति का उदास विचार सुनकर लाल काकी वैसा रूप बनाना चाहती थीं, जिसमें वे पति के साथ संगिनी की तरह चल सकें। वहाँ यदि किसी काम या विचार की कोई कचोट हो गई हो, तो उसे दोनों प्राणी मिल बैठकर विचारते हुए ठीक करेंगे।

जैसे कोई किसी की बात सुनने के लिए झपटता है, वैसे ही लाल काकी झपटकर बोलीं:

"परिवार की बात यदि परिवार के लोग नहीं समझेंगे, तो परिवार चलेगा कैसे? कभी कुछ अच्छा या कुछ खराब मुझसे हो जाएगा या आपसे हो जाएगा, तो उसे हम दोनों ही मिल बैठकर विचारेंगे न, ताकि वह आगे की बाधा न बने।"

पारखी लाल काका ने लाल काकी का विचार परख लिया। लेकिन जैसी परिस्थिति बन रही है और जैसी परिस्थिति के अनुकूल वे जीना चाहते हैं, उन दोनों के बीच तो समझौता करना ही पड़ेगा।

लाल काका बोले: "कल रात देर से खाया, जिससे भोर-पहर का काम बाधित हो गया। यह बात तो अपने ही सोचनी पड़ेगी कि जीवन की तीनों क्रियाएँ, भोजन, आराम और काम, अपनी गति से चलती रहें। वह तो अपने पूरा करने से ही पूरा होगा।"

लाल काकी सारी बात नहीं समझ पाईं, लेकिन इतना तो समझ ही गईं कि दूसरे दिनों जिस समय वे खाते थे, उस समय खाना नहीं बना

सकी, जिससे इनके एक उखड़ाहा काम का नुकसान जरूर हुआ। लेकिन ऐसा हुआ क्यों? दूसरे दिन सबेरे-सबेरे खाना बनाने बैठ जाती थी, कल देर हुई। लेकिन देर होने का भी तो कारण था। उसे भी नहीं छोड़ा जा सकता। जितना दूसरे साल बाढ़ आने से गाँव में पानी भरता था, उससे अधिक इस बार बारिश का पानी पहले ही हो गया। गाँव में पचासों घर गिरे हैं। वहाँ यदि दूसरों की सुधि लिए बिना केवल अपनी ही सुधि में लगे रहेंगे, तो वह उतना अच्छा नहीं होगा, जितना अच्छा होना चाहिए।

इसी बीच लाल काका बोले: "लोगों के बीच बैठकर उनका हाल-चाल जानना ही सामाजिकता है। वह तो जरूरी है ही, लेकिन उसके साथ यह भी जरूरी है कि दुनिया के साथ चलते रहें।"

जैसे लाल काकी सोलह आना समझ गईं, उसी तरह समझे हुए स्वर में बोलीं: "वह तो आप ही घर के पुरुष हैं। आप जो कहेंगे, जैसे कहेंगे, वैसे ही मैं चलूँगी।"

दोनों प्राणियों के बीच अनुकूल परिस्थिति देखकर लाल काका बोले: "इतने दिनों से जो आप रट लगाए हुए हैं कि गैस चूल्हा लेंगे, वह बात अब मेरे विचार में भी आ रही है। समय के हिसाब से वह सचमुच जरूरी हो गया है।"

जैसे लाल काकी को कुछ मिल गया हो, वैसे ही उछलकर बोलीं:

"यही तो जीवन है कि परिस्थिति के अनुकूल समझौता करते हुए चलें।"

लाल काकी का विचार लाल काका के मन में सोलह आना नहीं बैठा, क्योंकि परिस्थिति कैसे निर्मित होती है, उस ओर उनका मन बहक गया था। फिर भी बोले: "आपका विचार मैं काटूँगा थोड़े।" ❑

जिसका चूना, उसका पुण्य

☰

अर्धसरकारी सहयोग से साहित्यिक कार्यक्रम का आयोजन हुआ। अर्धसरकारी का अर्थ यह कि निश्चित राशि के रूप में सरकारी सहायता मिली और जन-सहयोग भी हुआ। वैसे जन-सहयोग की जितनी आशा की गई थी, उस रूप में सहयोग नहीं मिला। मतलब यह कि परिवारों की जनसंख्या के हिसाब से जितने सहयोग की उम्मीद थी, वह पूरी नहीं हुई। यह कहना ठीक नहीं कि लोगों में सहयोग का विचार समाप्त हो गया है। अब भी समाज में यह धारणा बनी हुई है कि जब तक जन-सहयोग नहीं होगा, तब तक सामाजिक काम नहीं चलेगा। और यदि सामाजिक काम ही नहीं चलेगा, तो समाज की पहचान क्या बनेगी? समाज की पहचान न बने, तब समाज कैसा है और उसके सामान्य जन कैसे हैं, यह कैसे समझा जाएगा?

सहयोग की धारणा रहने पर भी सामान्य लोगों का सहयोग कम हुआ। फिर भी इसे असहयोग की दृष्टि से नहीं देखना चाहिए। असहयोग का अर्थ है, समझकर सहयोग न करना। यहाँ वैसा नहीं था। साहित्यिक कार्यक्रम के महत्त्व को कम समझने के कारण आर्थिक सहयोग कम मिला। इसलिए यह कहना भी ठीक नहीं कि कार्यक्रम में कमी रही, क्योंकि गाँव-गाँव में चारपहिया वाहन, ठेकेदार और तरह-तरह के एजेंटों की बढ़ती संख्या से अच्छा सहयोग मिल गया। अर्धसरकारी कार्यक्रम होने के कारण सरकारी व्यवस्था इतनी थी कि गाँव के चौकीदार को

सुरक्षा का भार मिला और जनसेवक के माध्यम से सहयोग राशि मिली। चौकीदार और जनसेवक दोनों गाँव के ही थे। इसलिए कार्यक्रम समिति के सामने अपनी-अपनी उपस्थिति दर्ज कराकर छुट्टी लेते हुए बोले:

"हम भी तो गाँव के ही हैं। इसलिए यदि जरूरत पड़े, तो खोज लीजिएगा। सरकार में जवाब तो हमीं को देना होगा। लेकिन गाँववाले होने के नाते इतना जरूर अपनी नजर में रखेंगे कि कोई बाहरी आदमी गड़बड़ी करके न जाए। जैसे ही कोई गड़बड़ी होगी, हम उलझन में पड़ जाएँगे। इसलिए इतना हमारा भी निवेदन है।"

कार्यक्रम का प्रचार अच्छा रहा। कारण यह कि प्रचार-तंत्र की सुविधा बढ़ जाने से व्यक्तिगत संपर्क भी सहज हो गया है। गाँववालों की एक ही इच्छा थी कि कार्यक्रम अच्छा हो। अच्छे कार्यक्रम का मतलब था, अच्छी जुटान भी हो और अच्छा मनोरंजन भी।

राघव दिल्ली से गाँव आया था। उसने कुमार विश्वास का मंच देखा था, इसलिए उसके मन में भी जिज्ञासा थी कि वैसा ही कार्यक्रम यहाँ भी हो। प्रचार का भार राघव ने उठा लिया। वह लोगों का मन टटोलने का रास्ता जानता था। जिसका जैसा मन, उससे वैसी ही बात। इसी तरह उसने लँगड़े, अपाहिज, काने, बहरे तक की अच्छी जुटान कर दी। समय अनुकूल था, इसलिए आयोजन में कोई बाधा उपस्थित नहीं हुई। खाने-पीने से लेकर रहने-सहने तक की व्यवस्था भी अच्छी हुई।

कार्यक्रम शुरू होने से आधा घंटा पहले से मंच पर साहित्यकार, पत्रकार, रेडियो स्टेशन के कलाकार और गाँव के गीतकार-संगीतकार आने लगे। अधिकांश लोगों के साथ अपने-अपने दो-चार मुँहलगे रहते ही हैं। सब समूह बनाकर बैठने लगे और अपने-अपने मुँहलगुओं के साथ फुसफुसाहट भी शुरू कर दी।

अकेले राधेश्याम काका बीच में बैठे चारों ओर देख रहे थे कि

किसी से मैं भी बात करूँ। लेकिन बातचीत की भी अपनी बाँह होती है, अपना स्तर होता है। वह बाँह मिल ही नहीं रही थी। मन में यह भी था कि गंभीर साहित्यकारों की जुटान है, इसलिए यदि मंच पर गंभीरता न बरती जाए, तो वह भी कैसा होगा। वैसे चुप्पी नहीं थी, पर गुपचुप माहौल नहीं था, यह भी नहीं कहा जा सकता। वह भी था।

रेडियो स्टेशन के बदलू भाई भी थे। वे अपनी ड्यूटी में थे, इसलिए राधेश्याम काका से थोड़ा हटकर बैठे थे। दो आदमी थोड़ी दूरी से भी बात कर सकते हैं, पर जहाँ छत्ते की मधुमक्खियों की तरह पूरे मंच पर भनभनाहट चल रही हो, वहाँ गला फाड़कर भी बोलना मुश्किल होता है। बीच-बीच में यह भी होता है कि जिधर आँख-कान लगे रहें, उधर की थोड़ी अलग बात भी सुनी और देखी जा सकती है। फिर मन में यह भी आया कि गंभीरता का भी अपना-अपना विचार होता है। जब साहित्यिक कार्यक्रम में आया हूँ, तो उस विचार का निर्वाह करना ही पड़ेगा। पर तभी प्रश्न उठा कि जब कार्यक्रम की विधिवत घोषणा होगी, तभी तो जो जैसा है, वैसी गंभीरता दिखाएगा। कार्यक्रम शुरू होने से पहले तो सब सामान्य मनुष्य हैं। मनुष्य के बीच बैठकर यदि कुशल-समाचार भी न हो, तो वह भी कैसा होगा?

बीच-बीच में राधेश्याम काका यह भी देखते थे कि छोटे-मोटे नए आगंतुक जब मंच पर आते हैं, तो आँखों के इशारे से ही प्रणाम-पाती और कुशल-क्षेम कर लेते हैं। यह भी उनकी नजर में आ रहा था कि कुछ लोग अपने दोनों हाथ उठाकर इशारे में कुछ कह रहे थे।

बदलू भाई अपने संगी-साथियों के बीच बातचीत कर रहे थे। क्या बात कर रहे थे, यह तो वे ही जानते होंगे, लेकिन मुँह के रुख से लगता था कि खिचड़ी भोज की तरह अपने खिचड़ी कार्यक्रम की योजना बना रहे हैं। जब-जब फोरन वाली मिर्च की झाँस लगती, उनका मुँह खुल जाता और जब-जब घी की सुगंध आती, तब-तब चेहरा खिल उठता।

राधेश्याम काका से रहा नहीं गया। उन्होंने बदलू भाई की ओर इस उम्मीद से नजर उठाई कि बदलू भाई चारों कोनों से खेल समझने वाले शिकारी हैं, जरूर नजर उठाकर देखेंगे। जब नजर से नजर मिलेगी, तभी आँखों से कहूँगा कि जरा आप भी आगे सरकिए, अपने साथी को छोड़कर हटिए और थोड़ा मैं भी सरकता हूँ। जब हम दोनों एक ही बाँह के हैं, तब यदि दो जगह रहेंगे, तो दुनिया को अच्छी तरह थोड़े देख पाएँगे।

आँखों के इशारे से ही राधेश्याम काका बोले:

"झगड़ा न हो, तो चूना-तंबाकू क्यों बंद रहे?"

पक्षी ही पक्षी की बोली समझता है। बदलू भाई ने आँखों के इशारे से ही उत्तर दिया:

"फिफ्टी-फिफ्टी।"

मतलब यह कि आप भी थोड़ा एक ओर हो जाइए और मैं भी हो जाता हूँ। एक जगह होते ही तंबाकू भी खाएँगे और मंच का, यानी दुनिया का, खेल भी देखेंगे।

राधेश्याम काका बीच से सरकते हुए एक ओर हुए और बदलू भाई भी बढ़े। एक जगह होते ही दोनों हाथ मिलाने लगे। हाथ मिलाने से पहले बदलू भाई बोले:

"चूना-तंबाकू पर तो इस दुनिया का खेल चलता है। तब यदि हम दोनों चुप ही रहें, वही अच्छा है।"

राधेश्याम काका बदलू भाई को भीतर से जानते थे। बदलू भाई अलंकारिक आदमी थे। झट से बात फेंकने का हुनर उनमें राधेश्याम काका से अधिक था। पर जैसे भी हों, थे तो संगी ही। संगी का विचार न समझेंगे, तो संग-साथ कितनी देर चलेगा?

बदलू भाई में यह गुण भी था कि कोई बात बोलने के बाद सुनने वाले का मुँह बिगड़ता देखकर समझ जाते थे कि शायद मेरे विचार का

रस ठीक से नहीं पी सका। लेकिन कितना पी सका या नहीं पी सका, यह जानने के लिए तो तीन लाख वाला जापानी थर्मामीटर चाहिए।

राधेश्याम काका का मुँह वैसा ही बिगड़ता देखकर बदलू भाई बोले:

"तम से तंबाकू हुआ और चन से चूना।"

बदलू भाई के मन की बात जैसे राधेश्याम काका समझ गए। बोले:

"आपकी बुझौवल समझने वाला ही समझ सकता है। मेरे जैसे आदमी के लिए तो गीत और छंद खोलकर कहेंगे, तभी समझ पाऊँगा।"

राधेश्याम काका की बात को बदलू भाई ने वैसे ही झपट लिया, जैसे मेले में बच्चों के हाथ से अरवा चावल की रोटी और आलू-गोभी की तरकारी चील झपटकर उड़ जाए और बच्चे अपना आहार छिन जाने पर ध्यान न देकर खिलौने की तरह चील को देखते और हँसते रह जाएँ। बदलू भाई बोले:

"गीत तो संगीत है, जो लय के साथ चलता है। लय असीमित है। लेकिन छंद मात्राबद्ध होता है, जो ध्वनि-अंकन को पकड़कर अपना सृजन करता है।"

बदलू भाई की जीभ पर जैसे बात तैयार पड़ी थी। वे इतनी तेजी से बोल गए कि राधेश्याम काका थकमका गए। थकमकाने का कारण यह था कि काका स्वयं तो गद्यकार थे, लेकिन साहित्यिक कार्यक्रम के कारण जोड़-तोड़कर लयात्मक कविता भी लिख लेते थे। न छंद रटा था और न मात्रा का ठिकाना ठीक से समझते थे।

राधेश्याम काका का ठकुआया हुआ मन देखकर बदलू भाई समझ गए कि राधेश्याम जैसे सीधे रास्ते पर चलने वाले आदमी हैं, वैसे ही सीधे मन वाले भी हैं। इसलिए बातचीत को आगे न ठेलकर बदलू भाई ने पाशा पलटते हुए कहा:

“जब एक जगह बैठे हैं, तो पहले तंबाकू खाइए। समझते तो हैं ही, जो होना होगा, वह होगा ही। उसके लिए अपने को फीका-कड़वा बनाए रखना भी ठीक नहीं।”

बोलने के क्रम में बदलू भाई बोल तो गए, लेकिन तुरंत चारों ओर नजर दौड़ाने लगे कि तंबाकू खाना किसी को बुरा तो नहीं लगा। नजर दौड़ाते ही लगा कि कितने लोगों की इच्छा हो रही है। लेकिन जब अपनी तंबाकू की डिब्बी पर नजर गई, तो याद आया कि डिब्बी में तंबाकू है ही नहीं, केवल चूना है। मन को पीछे लौटाते ही बात खुल गई कि जब दोनों संगियों के बीच फिफ्टी-फिफ्टी का संबंध है, तब परवाह किस बात की। वैसे राधेश्याम काका का मन बदलू भाई की बातों पर छछला रहा था, इसलिए उनकी नजर तंबाकू से हट गई थी। इसी बीच अपना हिस्सा बढ़ाते हुए बदलू भाई बोले:

“तंबाकू आपका, चूना और उसे मिलाना मेरा। अब देर मत कीजिए।”

बदलू भाई के मुँह से तंबाकू निकलते ही राधेश्याम काका ने जेब से तंबाकू की डिब्बी निकालकर उनकी ओर बढ़ाई और बोले:

“अच्छा तंबाकू है। शुद्ध सरैसा। इसलिए चूना अच्छी तरह पिलाइएगा।”

राधेश्याम काका के मुँह से तंबाकू की बड़ाई सुनकर बदलू भाई के मन में कचोट हुई। कचोट यह कि दिन भर तो सकरी-कट तंबाकू खाने वाला हूँ। तब? पर तुरंत विचार को मोड़ते हुए बोले:

“रास्ते में तंबाकू खत्म हो गया। कहीं खरीदने का मौका ही नहीं लगा। अब सोच रहा हूँ कि जब पान चलेगा, तब उसी डाली से एक पुड़िया तंबाकू ले लूँगा।”

जैसे-जैसे बदलू भाई एक हाथ की हथेली पर दूसरे हाथ का अंगूठा

रगड़ते रहे, वैसे-वैसे मन में तरह-तरह के विचार भी उठते रहे। तंबाकू तेज था। मुँह में डालते ही दोनों के मन को रसाने लगा। इसी बीच पानी के साथ चाय के कप मंच पर पहुँच गए। चाय का कप देखकर बदलू भाई ने मन-ही-मन अपने हिस्से की ओर बढ़ने का विचार किया, जिसे राधेश्याम काका समझ गए। समझते ही बोले:

"अभी चाय आई है, पान बाद में है। तब इस तरह कसमस क्यों कर रहे हैं?"

अपना आँट-पेट समझते हुए बदलू भाई चुप ही रहे। फिर भी मन में यह कसमसाहट बनी रही कि सीमा-लाँघन हो जाएगा।

घोषित समय के हिसाब से पंद्रह मिनट की देर हो रही थी, लेकिन अभी तक उतने ही लोग पहुँचे थे, जितने सुनाने वाले थे। मतलब, कवि थे। सुनने वाले गाँव-समाज के लोग अभी एक-दो ही आ रहे थे। माइक पर बार-बार घोषणा हो रही थी कि कार्यक्रम शुरू होने वाला है, इसलिए समाज से आग्रह है कि यथाशीघ्र सभा-स्थल पर पहुँचकर आसन ग्रहण करें। लेकिन बहिरे करैत के विष पर मंत्र की तरह कोई सुनवाई नहीं हो रही थी। कुछ गाँववालों के मन में ऐसा विचार जरूर था कि बाहर के विद्वान आए हैं, इसलिए साथ देना केवल अनिवार्य नहीं, उचित भी है। पर ऐसे लोग कम थे। अधिक लोग अपने-अपने जीवन की लय अपने-अपने ढंग से पूरी करने के पीछे लगे थे। ऐसे लोगों का कवि और कविता से मेल नहीं बैठ रहा था।

आधा घंटा देर होते-होते छोटी सभा लायक दर्शक-श्रोता पहुँच गए। कार्यक्रम शुरू हुआ। मंच सजने लगा। मान्य-जानकार साहित्यकार लोग मंच पर बैठने लगे। बदलू भाई अपने निर्धारित स्थान पर पहुँच गए थे, पर राधेश्याम काका पीछे रह गए। संयोग से राधेश्याम काका ने भी पहली जगह बदलकर मंच पर स्थान पा लिया। उनके मन में था कि ऐसे खिचड़ी मंच पर अचार-चटनी बनकर अपनी मर्यादा बचाए रखना अच्छा

है। वही हुआ। पहली कतार के अंतिम छोर पर राधेश्याम काका बैठाए गए। बैठते ही मन में खुशी झलक उठी कि अच्छा हुआ। तंबाकू का थूक फेंकने में आसानी होगी और बैठक के एक छोर पर बैठने से अलग पहचान भी बनी रहेगी। भाई, सब अपने विचार के मालिक हैं। एक जगह बैठकर विचार कीजिए!

अपनी जगह पर बैठे बदलू भाई राधेश्याम काका पर आँख गड़ाए हुए थे। जब वे अपनी ओर देखते, तो समझ में आता कि मैं तो समुचित जगह पर हूँ, पर राधेश्याम काका के लिए यह जरूर अनुचित हुआ है। मैं तो नौकरी वाला आदमी हूँ, ड्यूटी में हूँ। मेरा गुण चाहे जो हो, अभी मुझे एक उत्तरदायी आदमी की तरह निभाना है।

चारों ओर घूमती बदलू भाई की नजर ने अंततः समझौता कर लिया कि जब कार्यक्रम ही खिचड़ी है, तो मेड़-धूर का ठिकाना कैसा। जैसे गाँव का पहला साहित्यिक आयोजन था, वैसे अच्छा जम गया। अच्छा जमने के कई कारण रहे होंगे, लेकिन एक प्रमुख कारण यह भी था कि कश्मीर से कन्याकुमारी और मेची धार के किनारे से लेकर अगरतला तक नौकरी करने वाला समाज गाँव का हिस्सा बन चुका था। सबको कुछ नया विचार रखने की इच्छा थी। इसलिए एक कवि के काव्य के बाद पचासों रंग की शायरी, दोहे और पचासों भाषाओं के वाक्य मंच पर श्रोता-वक्ता दोनों ओर से झरने लगे। ढाई घंटे कैसे गुजर गए, न कवि-साहित्यकार समझ पाए और न श्रोता।

अंतिम पाठ दीनानाथ बाबा का हुआ। थुल-थुल बूढ़े दीनानाथ बाबा थे, इसलिए चार लोगों ने मिलकर उन्हें आराम-कुर्सी पर बैठाया। भोर की नढ़िया की तरह सबकी नींद टूट चुकी थी। विचार ग्रहण करने के लिए सब एकाग्र थे, इसलिए सभा एकदम शांत हो गई।

शांत सभा देखकर दीनानाथ बाबा अपने पहले आशीर्वचन की तरह बोले:

"यह कविता पचास वर्ष पहले रची थी।"

'पचास वर्ष पहले' सुनकर सभा में गुदगुदी शुरू हो गई। मंच पर बैठे दीनानाथ बाबा कान लगाने लगे कि कैसी प्रतिक्रिया हो रही है। पर समाज की भी थाह नहीं। पचास वर्ष पहले सुनकर कौन किस हँसी से हँस रहा है। पचास वर्ष पहले के समाज का आईना आज के समाज के लिए कितना उपयोगी है, यह कौन समझे। गुदगुदी के साथ भनभनाहट शुरू हुई:

"पचास वर्ष में कुछ रचा ही नहीं, जो बदलते समाज का हाल-चाल सुनाएँगे!"

"पचास वर्ष पहले कविता करते थे, बाद में छोड़ दिया!"

हर्ष-विस्मय से सभा भनभना ही रही थी कि इसी बीच मंच-संचालक ने आदेश छोड़ा:

"अब आप सब अपनी-अपनी भनभनाहट बंद करके सुनिए।"

फिर मंच-संचालक महोदय ने कहा:

"बंधुगण! एकाग्र होकर बाबा का आशीर्वचन सुनिए।"

बाबा के कविता-पाठ का नाम सुनकर कुछ लोग आकांक्षी जरूर हुए, पर कुछ लोगों के बीच गुदगुदी चलती रही। गुदगुदी का कारण था पचास वर्ष पहले की कविता। पचास वर्ष पहले की कविता और आज के बीच पचास वर्ष का समय-अंतराल था। दूसरी बात यह भी कि जो लोग एक-दो बार सुन चुके होंगे, उन्हें क्या मिलेगा। वैसे किसी कविता का रसास्वादन एक बार सुनने से भी हो सकता है और दस बार सुनने पर भी नहीं। भाई, इसका कारण स्पष्ट है। कोई यदि रामायण को अपने आचरण के अनुकूल बनाकर पढ़ता है, तो उसे आगे के पाठ की जरूरत होती है। पिछला पाठ तो जीवन का पिछला पन्ना हुआ, इतिहास हुआ, भूत हुआ। जरूरत वर्तमान और भविष्य की है। लेकिन जो बिना आचरण

बनाए केवल पाठ करता है, उसे दस बार क्या, दस युग पाठ करने पर भी रस नहीं मिलेगा।

एक ओर बैठे राधेश्याम काका और दूसरी ओर बैठे बदलू भाई सभा की ओर नजर दौड़ा-दौड़ाकर इसी निर्णय पर आते कि जब कार्यक्रम खिचड़ी है, तो सब कुछ खिचड़ी ही होगा।

खैर, खीर भले न हो, क्योंकि वह एक गुण-स्वभाव वाली वस्तु का समावेश है, पर खिचड़ी वैसी नहीं होती। वह नमकीन भी होती है और मीठी भी। भले ही जाति-स्वभाव के कारण नमक अपना नाम छिपाकर खिचड़ी ही कहलाए और मीठा अपना नाम खोलते हुए गुड़-खिचड़ी कहलाए। घी का प्रवेश नमकीन खिचड़ी में पचता है, गुड़-खिचड़ी में नहीं। फिर भी वह अपना नाम जोड़कर घी-खिचड़ी तो कहलाता ही है।

आँखों को तिरछा करते हुए बदलू भाई ने राधेश्याम काका से इशारे में पूछा:

"अच्छा लग रहा है या नहीं?"

जैसे आँख के इशारे में बदलू भाई ने पूछा, वैसे ही राधेश्याम काका ने भी इशारे में उत्तर दिया:

"जैसे आप, वैसे ही मैं भी।"

दोनों दीनानाथ बाबा की कविता सुनकर मन-ही-मन अपने-आप में रमने लगे। दोनों के रमने का अपना-अपना कारण था। कविता रेडियो स्टेशन से प्रसारित हो चुकी थी, इसलिए बदलू भाई मन-ही-मन खीझ रहे थे कि भूत के साथ मैं भी भुतिया रहा हूँ। लेकिन राधेश्याम काका के रमने का कारण यह था कि जब नए समाज में प्रवेश मिला है, तो उस समाज को साहित्य-समाज में कैसे प्रवेश कराया जाए, वैसा ही कविता का पाठ भी होना चाहिए।

ठहाके के बीच मंच विसर्जित हुआ। मंच-विसर्जन होते ही

राधेश्याम काका सिमटकर बदलू भाई की ओर बढ़े और बदलू भाई भी राधेश्याम काका की ओर बढ़े। आगे बढ़ते ही बदलू भाई बोले:

"भाई साहब, जीती-जागती जिंदगी ऐसी ही होती है।"

बदलू भाई राधेश्याम काका का अध्ययन करते हुए बोल रहे थे। अध्ययन यह कि शीर्ष पाठ जैसा होना चाहिए था, वैसा नहीं हुआ। फिर भी मन में इतनी खुशी तो थी कि नए समाज के लिए नया कार्य हुआ, इसलिए नम्र होना ही पड़ा। राधेश्याम काका बोले:

"जाने दीजिए, जितना हुआ, सो हुआ। तंबाकू खाइए और आप भी विदा होइए।"

जेब से तंबाकू की पुड़िया निकालकर बदलू भाई बोले:

"संचालन समिति तक अच्छी बनी थी। लीजिए, खाने वालों के लिए खरीदी गई पुड़िया है।"

मुस्कुराते हुए राधेश्याम काका बोले:

"एक बार आपका चूना था और मेरा तंबाकू, लेकिन इस बार मेरा चूना रहेगा, क्योंकि आपका तंबाकू बचा-खुचा है।"

बोलने वाले आदमी थे बदलू भाई। बोले:

"जितनी तंबाकू की पुड़िया थी, उस हिसाब से खाने वाले कम थे। घर की चीज फेंकी जाती क्या? उससे अच्छा यही कि उसका उपयोग हो गया।"

चुनौटी निकालकर बदलू भाई के हाथ में देते हुए राधेश्याम काका बोले: "अच्छा लगा या नहीं?"

'अच्छा लगना' सुनते ही बदलू भाई को जैसे बर्र ने काट लिया हो, वैसे छटपटाते हुए बोले:

"पहली कविता का पाठ जो हुआ, तभी मन उचट गया। फिर

कितना भी आसन मारता, उचटाव कम नहीं हुआ। अंत तक बना रहा।"

पहला पाठ नवयुवक कवि ताराकांत का था। ताराकांत बहुराष्ट्रीय कंपनी में जीविकोपार्जन करते थे। पर कविता गाँव के उजड़े-उखड़े जीविकोपार्जन करने वालों के जीवन से संबंधित थी। शब्द-विन्यास अच्छा था। राधेश्याम काका ने ताराकांत के जीवन को उस ढंग से नहीं देखा था, इसलिए भाव के विचार में भावावेश में आ गए थे, खासकर गाँव के उजड़े-उखड़े जीवन की चर्चा सुनकर। फिर भी यह बात राधेश्याम काका के मन में ठहक रही थी कि कविता अपरिचित कवि की रचना जैसी है। लेकिन नवयुवक रचनाकार होने से मन में आशा भी थी कि आगे अच्छी कविता करेंगे। बोले:

"क्यों, शुरू ही में मन उचट गया?"

'क्यों' सुनकर बदलू भाई ने चारों ओर नजर दौड़ाई। समझ गए कि अभी कार्यक्रम का ठीक से विसर्जन नहीं हुआ है, लोग चारों ओर छिटके हुए हैं। बोले: "भाई साहब, मैं तो बँधे हुए जीवन के जाल में पड़ा हूँ। तब मुँह कैसे खुला रहेगा! आज इतना ही रहने दीजिए।"

होंठ में तंबाकू दबाते हुए राधेश्याम काका बोले:

"भेंट-घाट होती रहेगी।"

बदलू भाई बोले: "मन रहते भी मन-मरा बना हूँ। जीवित रहा तो भेंट होती ही रहेगी।"❑

त्रिकालदर्शी

☰

मौसम बदलते ही मानसून का मन बिगड़ गया। आम की बगिया होते हुए भी इस बार पेट खाली ही रह गया। भूख भी तो भूख है। पेट में लहर उठे नहीं कि बकबक शुरू हो जाती है। बकने में कोई केवल बकैत बनता है और कोई वक्ता बन जाता है। बकने का अर्थ यह कि इस साल आम नहीं फला। हजारों बीघे की उपज मारी गई। उत्पादन के साथ ऐसी वस्तु का ह्रास हुआ, जिसे फल कहते हैं और जो शरीर के लिए केवल पेट भरने वाला भोजन नहीं, पौष्टिक आहार भी है। लेकिन क्या वह सचमुच फल न फलने का कारण बताएगा? नहीं, वह कहेगा कि लोग इतने पापी हो गए हैं कि सारा अमृत-फल नरक की ओर जा रहा है। विचार को रहस्यपूर्ण मान भी लिया जाए, पर जब लोग रहस्य गढ़ने का हुनर सीखेंगे, तभी रहस्य का रहस्य समझेंगे। वह तो है नहीं। ऐसे लोग अधिक हैं, जो खेत रहते हुए भी उसे छोड़कर नौकरी करने चले गए और खेत गाँव में रह गया। जब खेत छोड़ दिया, तब उस खेत का जो भवितव्य है, वही होगा। इसलिए जीवन भर में एक बार खेती करने के विचार से आम-कटहल लगा लिया। आम खाने और मचान पर बैठकर बरहमासा गाने के लिए दस दिन गाँव आ गए। लेकिन गाँव में ऐसे लोगों की कमी भी नहीं है, जो गाँव की उन्नति नहीं चाहते। भले वे इस बात को समझते हों या न समझते हों कि केवल व्यक्ति के विकास से देश या गाँव का विकास नहीं होता, जब तक उसे सामूहिक और सामाजिक रूप में न

बदला जाए।

बरसाती मौसम आते ही वर्षा ऐसी झड़ी कि उसने बाढ़ का रूप ले लिया। बूढ़े-बुजुर्ग कहते हैं कि यदि आर्द्रा नक्षत्र में भूमि भर जाए, तो अच्छा होता है। लेकिन यहाँ प्रश्न उठता है कि भूमि भरने का रूप क्या है। भूमि अनेक प्रकार की होती है। कहीं पोखर है, कहीं डोभ-डाबर और छोटे-छोटे जलगड्ढे हैं। कहीं चौर है, कहीं नीची जमीन है। यदि चौर या नीची जमीन पहले ही पानी से भर जाए, तब उस खेत को आबाद कैसे किया जा सकता है? इसके अनेक कारणों में बीज का अभाव भी है। ऊपरी जमीन को आबाद करने के लिए यदि पानी भरेगा, तो निचले खेत डूब ही जाएँगे। फिर भी आज हम इक्कीसवीं सदी के किसान हैं। हमारे बीच साइबेरिया से लेकर ऑस्ट्रेलिया के रेगिस्तानी क्षेत्रों तक और जापान से लेकर चीन तक की खेती की जानकारी है। ऐसे में अपनी स्थिति देखकर ही तो हमें अपना रास्ता बनाना होगा।

अधिक वर्षा होने से गाँव में पानी भर गया। पानी की निकासी की समुचित व्यवस्था नहीं है। ऊपर से गाँव धार-धूर के बीच स्थित है। हमारे गाँव में नामित धारा एक भी नहीं है, केवल एक छोटी मौसमी सुपेन है। वह भी थोड़े-बहुत गाँव की सीमा के भीतर ही घुसी है। खैर, जो हो, इतना तो है ही कि चार कोस पूरब कोसी और दो कोस पश्चिम कमला के बीच हमारा गाँव बसा है। इसलिए उन दोनों के भीतर जो भुतही बिहूल, गहुमा, बलान जैसी उलझी हुई धाराएँ हैं, उन्हें धारा नहीं कहा जा सकता, यह भी नहीं कहा जा सकता। इस हिसाब से गाँव सोलह आना धारा के किनारे भले न हो, धारा के पेट का गाँव तो कहा ही जा सकता है। गाँव की बनावट भी दूसरे गाँवों से अलग है। किसी गाँव में नीची जमीन कम होती है और ऊँची जमीन अधिक। साथ ही उत्तर से दक्षिण की ओर जमीन की ढलान रहती है, जिससे उत्तर में नेपाल तक का पानी बहता चला आता है। हमारा गाँव सघन आबादी वाला है और उस अनुपात में

जमीन कम है। फिर गाँव की बनावट भी विचित्र है। गाँव के चारों ओर चौर जमीन है, जो कुल खेती योग्य जमीन में आधे से अधिक है। इस बार पहले ही वर्षा हो जाने से पूरा गाँव जलद्वीप बन गया। साथ में बाहरी पानी की आमद भी हो गई। जिस अनुपात में गाँव में पानी आया, उस अनुपात में निकास नहीं है। इसी कारण पंद्रह दिनों से गाँव के सारे खेत डूबे हुए हैं।

गाँव की दशा देखकर अपनी पीड़ा को सामूहिक पीड़ा मानकर धैर्य किए हुए हूँ। वैसे खेत-पथार डूबने से सबकी पीड़ा एक जैसी नहीं होती। कम-बेसी तो है ही। जो लोग परिवार के साथ बाहर जाकर नौकरी करते हैं, उनकी पीड़ा अलग है। जो गाँव में रहकर नौकरी करते हैं, उनकी अलग। और जो सोलह आना खेती को ही जीविका बनाकर जी रहे हैं, उनकी पीड़ा अलग है। ऐसे ही लोगों में देवी काका भी हैं, जो पूरी तरह खेती को ही जीवन का आधार बनाकर जीते हैं।

मेरा घर दूसरे टोले में है और देवी काका का घर दूसरे टोले में, लेकिन बात-विचार और जीविका, दोनों रूपों में हमारा संबंध गहरा है। मैं छोटा गृहस्थ हूँ, इसलिए नुकसान भी कम हुआ। देवी काका कम जमीन रहते हुए भी बड़े गृहस्थ हैं, इसलिए उन्हें अधिक नुकसान हुआ है। कम जमीन रहते हुए भी बड़े गृहस्थ बनने का कारण यह है कि देवी काका सदा विचार और काम, दोनों से गाँव की उन्नति में लगे रहते हैं। अनेक प्रकार के अन्न की खेती के साथ साग-सब्जी, फल-फलहरी और पशु-मवेशी भी रखते हैं। इसी से वे हमेशा अपने जीवन में रमे रहते हैं।

मन में हुआ कि खुशहाली के समय तो हम दोनों हर दिन एक-आध घंटा बैठकर अपने और समाज के विषय में बातचीत करते ही आए हैं। अभी तो कठिनाई का समय है, इसलिए उनसे भेंट करने जाना चाहिए। खेत-पथार पानी में डूबे होने से काम भी कम है। अधिकतर बैठना ही है। दूसरे, विपत्ति के समय भेंट करना भी जरूरी लगा। घर का

काम सँभालकर पत्नी से कहा:

“देवी काका से मिलकर आता हूँ।”

पत्नी ने कहा:

“पानी-बूँदी का समय है, अधिक देर मत लगाइएगा।”

पत्नी की बात सुनकर देवी काका से मिलने निकल पड़ा। जूता-चप्पल नहीं पहना। कारण यह था कि रास्ते में कीचड़ और फिसलन अधिक है, और तीन जगह रास्ता टूटा हुआ है, जहाँ पानी की धार भी चल रही है।

उदास देवी काका दरवाजे पर बैठे मन-ही-मन सोच रहे थे कि साल भर की मेहनत नष्ट हो गई। केवल मेहनत ही जाती, तब संतोष में बाधा नहीं होती। समझ लेते कि समय के साथ मेहनत गई तो गई, आगे समय के साथ जीवन चलता रहेगा। लेकिन बात इतनी भर नहीं थी। जब घूमने-फिरने की उम्र थी, तब वे दूसरे-दूसरे गाँवों, जिलों और राज्यों से तरकारी और फल के पौधे लाकर संग्रह करते थे। वे सब चले गए। अब फिर से वैसा संग्रह करना संभव नहीं। अब घूमने-फिरने लायक शरीर में शक्ति कहाँ रही! यहाँ आकर देवी काका का मन चहकने लगा। चहकना यह हुआ कि जिनके साथ जीवन बीतता था, वही साथ छोड़कर चले गए और अब फिर लौटकर नहीं आएँगे। संगी की तरह वे फलदार पेड़ों के पीछे लगे रहते थे और वे पेड़ भी अपने समय पर पौष्टिक और स्वादिष्ट फल देते थे। जैसे पेड़-पौधों के साथ उनका जीवन बीतता था, वैसे ही पेड़-पौधों का जीवन भी उनके साथ बीतता रहता था। सहचर की तरह दोनों साथ थे। पर अब वैसा सहचर फिर बना पाएँगे? नहीं बना पाएँगे। थोड़ा संभव भी हो, तो अधिक नहीं। मतलब यह कि किसी उपाय से कुछ पौधे और बीज बच भी जाएँ, तब भी गाँव के खेत-पथार की जो रूपरेखा बन गई है, वह प्रतिकूल हो गई है। प्रतिकूल इसलिए कि

सरकारी महकमे में भी पूर्ववर्ती सोच है, ठेकेदारों में भी और गाँव के कर्ता-धर्ताओं में भी। गाँव-समाज को कौन समझाए कि वह अपना भला-बुरा न काम में समझता है और न विचार में। इसी से पानी के कारण गाँव में जो दुर्दशा शुरू हुई है, वह जल्दी मिटने वाली नहीं।

यहाँ आते-आते देवी काका का मन ठिठक गया। ठिठकते ही सूझा कि तब तो गाँव का भविष्य अँधेरा हो जाएगा! गाँव का भविष्य अँधेरा हो जाएगा, तो उस अँधेरे में लोगों की जिंदगी और जीवन क्या होगा? क्या मनुष्यविहीन धरती हो जाएगी या धरतीविहीन मनुष्य? जैसे मनुष्य के बिना धरती का कोई मोल नहीं, वैसे ही धरती के बिना भी मनुष्य का कोई मोल नहीं रहता। वैसे जीवन के अनुकूल अपनी-अपनी धरती भी होती है। लेकिन यहाँ प्रश्न किसानी जीवन का है।

अचानक देवी काका का मन चमका। चमकते ही विचार उठा कि जिसे हम पूर्ववर्ती सोच-विचार कहकर अपने को परवर्ती समझते हैं, उसमें कहीं-न-कहीं कोई गुण छिपा है, जिसे हम या तो भूल रहे हैं या देख नहीं पा रहे हैं।

यह बात आते ही देवी काका की दृष्टि त्रिकाल-दर्शन की ओर बढ़ी। त्रिकाल-दर्शन की ओर बढ़ते ही त्रिकाल-जीवन का उजाला भक से मन में आया। विचार उठा कि न आज ही मनुष्य की ऐसी परिस्थिति से भेंट हुई है और न लोग अपने जीवन के पीछे देखते रह गए। वे आगे बढ़ते गए। भले जीवन कहीं पीछे छूट गया हो, या जीवन के पिछड़ने से विचार-विवेक धकियाया गया हो, लेकिन वह सोलह आना मर गया, यह भी नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा होता, तो हजारों वर्षों के जीवन का रूप-रंग आज नहीं दिखाई देता। वह तो दिखाई दे ही रहा है। देवी काका के मन में जिज्ञासा जगी।

जिज्ञासा जगते ही उन्होंने पूर्ववर्ती जीवन के बारे में सोचा। मन में उठा कि जिस धरती ने सैकड़ों-हजारों त्रिकालदर्शी पैदा किए हैं, उसी

धरती पर आज मैं भी खड़ा हूँ। देवी काका में जैसे हूक जगी। हूक जगते ही दृष्टि त्रिकालदर्शी पर टिक गई। मन में उठा, त्रिकालदर्शी क्या? भूत, वर्तमान और भविष्य को जानने वाला। भूत तो भूत हुआ, जिसका लिखित-अलिखित इतिहास है। वर्तमान सामने है, लेकिन भविष्य खोया हुआ है। उसे विश्वास के साथ कैसे खोजा जाए?

यहाँ आकर देवी काका का विचार महाभारत के किसी गहन श्लोक की तरह चार दिशाओं में फैल गया। फैलते ही विचार पनपा। पनपते ही मन खिला। खिलते ही परिमार्जित विचार जागा। जागा यह कि जीती-जागती जिंदगी में त्रिकाल तो आता ही है। कभी कष्टकर समय आता है, कभी संतुलित समय, और कभी अच्छा-से-अच्छा समय। इन्हीं तीनों समयों के बीच जीवन चलता है। तीनों जीवन ही हैं, इसलिए तीनों को जीने का हुनर चाहिए। जैसे ही जीने का हुनर सीखा जाएगा, अच्छा-बुरा समय आता-जाता रहेगा और जीवन अपनी गति से कभी दौड़कर, कभी कदम-दर-कदम और कभी ठहरे-ठहरे भी चलता रहेगा। देवी काका के मन में धीरे-धीरे एक उछाह उठने लगा। इसी बीच मैं उनके पास पहुँचा और पैर छूकर प्रणाम किया। काका भीतर से पीड़ित थे, पर जो हर दिन अच्छा आशीर्वाद देते आए हैं, वे आज अपना दुख मुझ पर कैसे झाड़ देते। मैं कोई दूसरे गाँव का तो हूँ नहीं, जो वे मेरी दशा नहीं जानते। पैर छूकर प्रणाम किया, माथे पर हाथ लगाया, पर बोला कुछ नहीं।

प्रणाम करने के भी कई चलन हैं। कहीं पैर छूकर गोड़ लागकर प्रणाम किया जाता है। कहीं दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम कहा जाता है और कहीं केवल मुँह से भी प्रणाम कह दिया जाता है। लेकिन क्रियागत जीवन जानने वाले बिना बोले भी बात समझ लेते हैं। देवी काका ने हाथ उठाकर मेरे माथे को थपथपाते हुए कहा:

“भगवान सबका इष्ट करें।”

काका का आशीर्वाद सुनकर मन झुँझला गया कि अपनी ओर से

काका ने कुछ नहीं कहा और भगवान पर छोड़ दिया। भगवान क्या इष्ट करेंगे! वे तो स्वयं इष्ट-अनिष्ट दोनों हैं। मन में तरह-तरह की खटकी उठने लगी। देवी काका समझ गए। बोले:

“गौरी, मन खट्टा-मीठा क्यों हो गया?”

मैंने कहा:

“मन खट्टा-मीठा क्यों होगा। आपका आशीर्वाद अच्छी तरह समझ नहीं पाया।”

देवी काका बोले:

“बौआ, दुनिया में समझो या गाँव-समाज में, दो तरह के लोग होते हैं। वैसे बीच के लोग भी बहुत तरह के होते हैं। कुछ लोग थोड़ा इष्ट भी करते हैं और थोड़ा अनिष्ट भी। कोई अनिष्ट कम करता है और इष्ट अधिक। कुछ ऐसे भी होते हैं, जो इष्ट कम और अनिष्ट ही अधिक करते हैं।”

बीच में मैं बोल पड़ा:

“कैसे समझेंगे कि कौन अधिक इष्ट करने वाला है और कौन अधिक अनिष्ट करने वाला?”

मेरी बात सुनते ही, जैसे चौर में केसौर का पत्ता मिलते ही उसे उखाड़ने वाले को विश्वास हो जाता है कि अब केसौर मिलेगा और उखड़ेगा ही, वैसे ही विश्वास के साथ देवी काका बोले:

“जिसके मन में जैसा अभिष्ट रहता है, वह वैसा ही इष्ट या अनिष्ट करता है।”

देवी काका की कुछ बात समझ में आई और कुछ नहीं भी आई। लेकिन मन में कुरेद पड़ने लगी कि पंद्रह दिन के जीवन की बात करने आया हूँ और बेकार कथा-कहानी में भटक रहा हूँ। अपने विचार को मोड़ते हुए मैंने कहा:

“काका, इस बार का समय तो अजीब हो गया।”

‘अजीब’ सुनते ही देवी काका का मन जैसे उछला। बोले:

“अजीब हुआ या सजीव, इसे यूँ मत समझो।”

देवी काका की आत्मा जैसे परमात्मस्वरूप है, वैसे ही बुद्धि भी प्रबुद्ध है और विचार भी गहरे हैं। इसलिए मन सकपका गया कि उनसे कैसे कहूँ कि काका, आपका आगे का जीवन संकट में पड़ गया है। यदि ऐसा कहूँ और वे कह दें कि हम दोनों एक ही गाँव में हैं, जैसे तुम्हारा चलेगा, वैसे ही मेरा भी चलेगा, तब उनकी पीड़ा कैसे समझ पाऊँगा। तब अपने ही विषय में क्यों न कहूँ कि जो समस्या मेरी है, वही बड़े रूप में उनकी भी है। इससे इतना लाभ जरूर होगा कि जब किसी समस्या के समाधान का बड़ा रूप दिखाई देगा, तब वह समस्या भीतर मथने लगेगी। और जब मथने लगेगी, तब उसे हाथ से या किसी महीन वस्तु से छानकर किनारे फेंका जा सकेगा। विचार में मजबूती आई।

मैंने कहा:

“काका, अब जीवन कठिन हो गया है। जहाँ सुजीवन मिलेगा, वहीं चला जाऊँगा।”

जैसे देवी काका ने कान रोपकर सुना, वैसे ही आँख उठाकर देखा भी। बोले:

“बौआ गौरी, जब अपना इतना गया, तब भी जी-जान लगाकर अपने को खड़ा किए गाँव में हूँ। तुम्हारी तो बहुत छोटी समस्या है। तुम गाँव से क्यों भागोगे? हाँ, सुजीवन की बात कही। वह गाँव में भी बन सकता है, बशर्ते जी-जान लगाकर जीवन को पकड़ लो।”

देवी काका की सारी बात सुनी, लेकिन आधी-अधूरी ही समझी। आधी-अधूरी इसलिए कि गाँव में भी सुजीवन बन सकता है, ऐसा विचार मन में आज तक उठा ही नहीं था। इसलिए उस पर एक-आध मिनट भी

नहीं सोचा था। काका भी समझ गए कि गौरी मेरा विचार अच्छी तरह नहीं समझ पाया। इसी बीच मैंने कहा:

"काका, सुजीवन?"

'सुजीवन' बोलकर वाणी इसलिए रोक ली कि यदि ऐसी बात बोल दी जाए, जिससे प्रश्न ही खंडित हो जाए, तब उत्तर भी खंडित होगा। उत्तर खंडित होगा, तो कोई-न-कोई विचार उतर जाएगा। लेकिन यहाँ प्रश्न को उतारना नहीं, चढ़ाना था। यह विचार देवी काका के मन में पहले ही जग चुका था। वे बोले:

"बौआ गौरी, जैसे सरयू नदी के तट पर अयोध्या बसी है, जो राम की जन्मभूमि रही, उसी तरह यमुना नदी के तट पर वृंदावन है, जो कृष्ण की लीला-भूमि रहा। वैसे ही गाँव में भी जब सुविचार जगेगा, तब सुकर्म भी जगेगा। सुकर्म जगेगा, तो सुकृति रूपी कर्मभूमि बनेगी। और जैसे-जैसे सुकृति सुवृत्ति बनती जाएगी, वैसे-वैसे जीवन सुजीवन की ओर बढ़ता जाएगा।"

देवी काका ने तीन युग का इतिहास सुना दिया, लेकिन अपना मन भारी ही रहा। भारी क्यों नहीं रहता! जब पानी में डूबा पूरा गाँव ही भारी हो गया है, तब क्या मैं अपने गाँव से अलग हूँ जो उससे वंचित रहता। भारी मन के कारण देवी काका का विचार अच्छी तरह समझ नहीं पाया।

मन घूम गया कि अपना जीवन जो भारीपन से जकड़न की ओर बढ़ गया है, उसका उपाय क्या होगा। इसलिए विचार मोड़ते हुए मैंने कहा:

"काका, बड़ी साध से केले के पाँच पौधे केरल से लाया था। पाँचों पानी में डूबकर नष्ट हो गए!"

घाव पर मलहम लगाते हुए देवी काका मुस्कुराकर बोले:

"तुम्हें अपने इलाके में केले का पौधा नहीं मिला, जो देश की सीमा

से लाने चले गए?"

एक तो मन किए हुए काम पर, यानी केरल से केले का पौधा लाकर रोपने की पूरी प्रक्रिया तक में नाच रहा था, उस पर देवी काका ने ऐसी बात कह दी कि विचार पलट गया। मैंने कहा:

"काका, सीमा की बात नहीं है। केले से स्नेह है। रामेश्वरम् गया था। वहाँ पूरे बाजार में सबसे ललचाने वाला केला ही लगा।"

बीच में देवी काका ने टोका:

"तब तो रामेश्वरम् में सोलह आना फलाहार ही किए होगे।"

मेरे मन में भी रामेश्वरम् नाच रहा था। उस पर केले के बाजार की बात, मन मीठा था ही। मैंने कहा:

"काका, साध से एक गुच्छा खरीदा। गुच्छा भी आदमी के हाथ जैसा पाँच अँगुलियों वाला था। बत्तीस केले का गुच्छा था, दाँतेदार केले। अच्छे भी लगे और सस्ते भी। खूब खाया।"

बीच में टोकते हुए देवी काका बोले:

"सिर्फ खाया ही या उसका स्वाद भी पाया?"

मेरा भी मन खुल गया। मैंने कहा:

"बिना स्वाद पाए इतनी दूर से बैजनाथ बाबा की काँवर की तरह गाड़ी में केले का पौधा टाँगे चला आता?"

मेरी बात सुनते ही देवी काका आगे बढ़कर बोले:

"जब रामेश्वरम् से केले का पौधा लाए, तब थोड़ा और आगे बढ़कर लंका पहुँच जाते तो हनुमानजी की तरह और भी फल-फलहरी ले आते न?"

विचार की धारा में बह ही रहा था। अनजाने में बोल गया:

"उसमें कौन राहु-केतु बाधा बनता।"

इसी बीच दुर्गा काकी चाय लेकर पहुँचीं। चाय देखकर मन झट हल्का हुआ, पर उदासी अब भी छाई थी, जिसे दुर्गा काकी ने आँक लिया। जैसे डॉक्टर के यहाँ या अस्पताल में साधारण रोग वाला रोगी बड़े रोग से ग्रस्त रोगी को देखकर मन-ही-मन आश्वस्त होता है कि जब ऐसा रोगी बच सकता है, तब मैं तो बचा ही हूँ, उसके लिए बेकार मन को खट्टा किए रखना ठीक नहीं, उसी तरह आश्वस्त करते हुए दुर्गा काकी बोलीं:

"बच्चा गौरी, हमारे बड़े काका पोतों से कहा करते थे कि नौ आघात भी सब कुछ नहीं उघाड़ पाते, तब एक आघात क्या बिगाड़ेगा!"

दुर्गा काकी की बात भी सुन रहा था और चाय भी पी रहा था। एक तो स्वादिष्ट चाय, उस पर दुर्गा काकी का मधुर विचार। मन और मीठा हो गया।

मैंने कहा:

"काकी, जब नन्हीं-नन्हीं चींटियाँ झुंड बनाकर मेड़-धूर से निकलती हैं और बाढ़ के वेग में तैरती हुई समुद्र तक पहुँच जाती हैं, तब हम लोग तो किसी तरह मनुष्य हुए न!"

मेरे विचार में दुर्गा काकी को क्या मिला, यह तो वे जानें, पर उनका मन हरियाली से भर गया। उसे देखकर देवी काका ने विचार पकड़ते हुए बीच में कहा:

"बौआ गौरी, यही विडंबना है!"

देवी काका का आगे का विचार सुनने के लिए मैंने अपने को सावधान किया। अच्छा विचार सुनने के लिए जैसे कान को सचेत करना पड़ता है, वैसे ही ध्यान को भी ध्यानी बनाना पड़ता है। वैसा ही करते हुए मैंने कहा:

"क्या विडंबना, काका?"

मेरी बात सुनकर देवी काका के मन का विचार जैसे उछलकर

बाहर आना चाहता हो, वैसा ही उनके चेहरे पर दिखा। बोले:

"बौआ, जैसे पवित्र लोगों की दीवार पर देवालय खड़ा होता है, वैसे गंदगी ढोने वाले कीड़े के लिए भी जगह रहती है न।"

देवी काका का विचार अच्छी तरह नहीं समझकर मैंने पूछा:

"वह कैसे?"

हँसते हुए देवी काका बोले:

"व्यक्ति के भीतर भी सुकृति और कुकृति होती है, लेकिन वह व्यक्ति को प्रभावित करती है। यहाँ बात व्यक्ति की नहीं, समाज की है। समाज भी अच्छा-बुरा करने वालों का समूह है। कुछ अज्ञानता से होता है और कुछ ढिठाई से। जहाँ अज्ञानता होती है, वहाँ क्षमा की गुंजाइश है, हालांकि क्षमा में भी चेतावनी जरूरी है। लेकिन जहाँ ढिठाई से बिगाड़ होता है, वहाँ समूह को जागकर जगाना पड़ता है। यदि ऐसा नहीं होगा, तो समाज जितना उठना चाहेगा, उतना ही नीचे गिरता जाएगा। इसलिए..."

देवी काका का कुछ विचार समझा भी और कुछ नहीं भी समझा। इसी बीच पत्नी की बात याद आ गई कि अधिक देर मत लगाइएगा। मन कसमसाने लगा। मैंने कहा:

"काका, हरि अनंत, हरि कथा अनंता है ही। अभी छुट्टी दीजिए।"

मुस्कुराते हुए देवी काका बोले:

"छुट्टी ही छुट्टी है। लेकिन छुट्टी लेते-लेते जीवन की धारा से खुद ही मत छूट जाना।"

देवी काका के विचार को यदि अच्छी तरह समझते हुए जाता, तब न। मैं तो समझ ही नहीं पा रहा था। इसलिए सिनेमा की कटी हुई रील की तरह विचार कट-कट जा रहा था। फिर भी मैंने कहा:

“जीती-जागती जिंदगी में यदि यह सब नहीं होगा, तो जिंदगी की परीक्षा कैसे होगी?”

मेरा विचार देवी काका और दुर्गा काकी, दोनों को अच्छा लगा। सहमति देते हुए दुर्गा काकी बोलीं:

“दुर्गा दुर्गति-हारिणी हैं ही न।” ❑

बाढ़ का बड़ा फेर

☰

सावन महीने के कृष्ण पक्ष की द्वितीया थी। रविवार का दिन था। भोर-पहर के उखड़ाहा का नौ बज रहा था। पंचहथी लाठी हाथ में लिए जीवानन पूर्वी बधार की पश्चिमी मेड़ पर से ध्यान लगाकर अपना खेत देखने लगा।

बधार पानी में डूबा था। सबके खेत जैसे खो गए थे। कहीं-कहीं कुछ खेत अपनी मेड़-धूर बचाए, थोड़ा-बहुत चिह्न-परिचय बनाए हुए थे, लेकिन जैसे-जैसे वह आगे देखता गया, वैसे-वैसे बधार के खेत खोकर समुद्र जैसे लगने लगे। पश्चिमी मेड़ से दस कोला आगे जीवानन का डेढ़ बीघा खेत था। बधार की जमीन की बनावट के हिसाब से मेड़ के पास का खेत तीन सीढ़ी नीचे था। उस पर भी चारों मेड़ों में, यानी बधार के चारों ओर, पश्चिमी मेड़ सबसे ऊँची थी। बाकी तीनों मेड़ और बधार का भाग चपटा ही था। बीच बधार की बीस बीघा जमीन की सतह एक जैसी थी।

ठिठककर जीवानन मेड़ से उतरा और बगल के खेत में घुसकर देखने लगा। लाठी के हिसाब से डेढ़ हाथ और शरीर के हिसाब से भर जाँघ पानी था। पानी देखकर जीवानन फिर मेड़ पर आ गया और अनुमान लगाने लगा कि उसका अपना खेत इससे डेढ़-दो हाथ और गहरा होगा। दो हाथ नहीं, तो डेढ़ हाथ ही सही, तब भी चार फीट से अधिक पानी तो हो ही गया। पानी का बहाव रहने पर भी इतना पानी ठहरा रहेगा

ही। चारों ओर गाँव की जमीन की सतह इससे ऊँची है। इसलिए इस पानी के निकास की अभी कोई आशा नहीं। वैसे आशा दो तरह की होती है। एक, जो अभी है उसकी आशा। दूसरी, सुधार होने के बाद की आशा। दूसरी तरह की आशा तो है, लेकिन वह सुधार करने के बाद ही होगी। यदि किसी गाँव की नीची जमीन को दूसरे गाँव की नीची जमीन से बहाव बनाकर जोड़ा जाए, तब दो-तीन गाँव जुड़ते-जुड़ते कोई-न-कोई धारा पकड़ ही ली जाएगी। कारण यह कि अपने इलाके में धाराओं का जाल फैला हुआ है। वह बहते पानी का जाल है। एक धारा से दूसरी धारा, दूसरी से तीसरी धारा में मिलता हुआ पानी गंगा में पहुँच जाता है। गंगा में पहुँचने के बाद समुद्र पकड़ लेता है।

अभी मौसम की शुरुआत ही हुई है। खेती के हिसाब से भी और पानी की शुरुआती अवस्था के हिसाब से भी। अभी गाँव के पाँच प्रतिशत खेत भी आबाद नहीं हुए हैं। ऊपर से आबाद करने का जो साधन है, यानी धान का बिचड़ा, वह भी अच्छी तरह न बढ़ पाया है और न जग पाया है। सारा बिचड़ा पानी में डूबा है। उसके नष्ट होने की संभावना अधिक है। कुछ बच भी सकता है, लेकिन वह जागने के बीस दिन बाद ही रोपाई लायक होगा। उस पर भी वह ऐसे खेत में रोपा जाएगा, जिसमें बिचड़े की तुलना में पानी कम होगा।

जैसे-जैसे जीवानन का विचार आगे बढ़ता गया, वैसे-वैसे उसका मन भीतर से धँसता गया। धँसते-धँसते मन इतना धँस गया कि शरीर की ताकत घटने लगी। देह निस्तेज होने लगी। निस्तेज होते ही जीवानन का मन मान गया कि अब खड़ा रहा, तो गिर पड़ेगा। गिरने के डर से वह मेड़ पर ही बैठ गया।

बैठे-बैठे वह चारों ओर नजर उठाकर देखने लगा कि यदि कोई आस-पास होगा, तो आवाज दूँगा। लेकिन किसी को कहीं नहीं देखा। किसी को न देखकर अनायास उसके मन में उठा कि दूसरों की आशा

कितनी देर की जाए। इससे अच्छा है कि खुद कोई ऐसी युक्ति लगाई जाए, जिससे शरीर में उतनी ताकत आ जाए कि किसी तरह घर पहुँच सके। घर पहुँचने के बाद देखा जाएगा। गाँव पर इतनी आशा तो है ही कि दूसरा कोई न आए, अपनी पत्नी और माँ तो हैं ही। उस पर माँ को सौ तरह के रोग का प्रतिकार करने का हुनर है। बैठने से जीवानन का होश कुछ बढ़ने लगा। जैसे-जैसे होश बढ़ा, वैसे-वैसे शरीर की ताकत और मन की हूक भी बढ़ने लगी।

अब तक जीवानन के मन में था कि यदि बधार में अचेत हो जाऊँगा, तो बिना मरे नहीं रहूँगा। वैसे अचेत होने के बाद दोनों बात हो सकती है। कोई-कोई मर भी जाता है और कोई-कोई सचेत भी हो जाता है। सचेत और अचेत होने की दूसरी प्रक्रिया भी है। एक, किसी भयानक दृश्य को देखने या उसके घट जाने के बाद की। दूसरी, आगे की विपत्ति आँखों के सामने पड़ जाने पर। लेकिन इन दोनों के बीच शरीर के निस्तेज होते-होते भी मनुष्य अचेत हो सकता है। इसमें चेतना की क्रिया मजबूत रहती है। जिसकी चेतन-क्रिया जितनी मजबूत होती है, वह उतनी जल्दी अपने को सँभालकर उठ खड़ा होता है। जिसकी चेतन-क्रिया कमजोर होती है, वह हवा-पानी के सहारे देर से होश में आता है। लेकिन जीवानन के साथ ऐसा नहीं हुआ। उपज न होने से भविष्य की चोट ने उसे इस तरह चोट पहुँचाई कि शरीर की शक्ति घटने लगी। घटते-घटते वह इतना शक्तिहीन हो गया कि चलने-फिरने योग्य भी नहीं रहा।

जीवानन के शरीर की शक्ति की भरपाई तो अच्छी तरह नहीं हुई, लेकिन मन की शक्ति चलने-फिरने योग्य हो गई। चलते मन में उठा कि थोड़ी देर और इसी तरह आराम करूँगा, तो चलने-फिरने लायक हो जाऊँगा। जब चलने-फिरने लायक हो जाऊँगा, तब किसी तरह उठते-बैठते रास्ता काटकर गाँव पहुँच जाऊँगा। अपने शरीर की शक्ति को जीवानन का मजबूत होता मन हिला-हिलाकर जगाने लगा। जैसे-जैसे

देह में हलचल आई, वैसे-वैसे देह की शक्ति भी बढ़ने लगी।

संतोषी लाल भी बधार ही देखने आ रहे थे। दस कदम दूर से उनकी नजर जीवानन पर पड़ी। नजर पड़ने पर भी वे जीवानन को पहचान नहीं पाए। अनपहचाने मन में संतोषी लाल को लगा कि शायद कोई बधार देखने आया है और देखी हुई चोट से इस तरह चोट खा गया है कि मेड़ पर ही लुढ़ककर पड़ा है। थोड़ी ही देर बाद संतोषी लाल के मन में फिर उठा कि शायद कहीं मिरगी-तिरगी ने तो नहीं पकड़ लिया। मिरगी की बात मन में उठते ही संतोषी लाल ने कदम भी तेज किए और मन-ही-मन विचार भी तेज किया। विचार तेज होते ही मन में उठा कि यदि सचमुच मिरगी उठ गई हो, तब क्या करूँगा? देह तो ऐंठ गई होगी। लर-ताँगर की तरह हो ही जाएगी। तब कंधे पर उठाकर कैसे ले जाऊँगा? फिर तुरंत लगा कि बगल में, मेड़ के नीचे, समुद्र बना पानी पड़ा है। जैसे ही पानी में गया कि जीने की कोई संभावना नहीं रहेगी। तब तो इस मृत्यु का दोषी मैं ही बनूँगा। किसी का मुँह बंद कर दूँगा? वह तो बोलेगा ही कि फलाँ ने सामने देखकर भी अनदेखा कर दिया। जैसे ही एक आदमी इतना बोलेगा, दूसरा-तीसरा भी बोलेगा। कहेगा कि फलाँ दुष्ट है, झूठ-सच एक टोकरी लड़ाई जोड़कर समाज में फैला देगा। तब उसे चुन-चुनकर जवाब देना भी भारी हो जाएगा। इसलिए क्यों न समाज का पहला आदमी बनने की कोशिश करूँ, अपने किए कार्य से समाज में अपने को ऊपर चढ़ाऊँ।

यही सोचकर संतोषी लाल कदम तेज करते हुए आगे बढ़े। जीवानन के पास जाते ही उसे पहचान गए। पहचानते ही बोले:

“जीवानन! मैं भी तो बधार की ओर ही आ रहा था। जब तुम्हें ऐसा हुआ, तब जोर से आवाज भी देते, सो नहीं।”

जीवानन बोला:

"दोसकाका, आप कितनी देर पहले बधार में आए?"

संतोषी लाल बोले:

"कितनी देर पहले क्या, अभी आ ही रहा हूँ।"

जीवानन बोला:

"आप अभी आ रहे हैं, तो अधिक-से-अधिक पाँच मिनट हुए होंगे। मैं तो घंटे भर से गिरा हूँ। चलने-फिरने की ताकत देह से उड़ गई है।"

जीवानन की बात सुनकर संतोषी लाल मन-ही-मन सोचने लगे कि बेचारे के हृदय में इतनी चोट लगी है कि छोटी-मोटी मरहम-पट्टी से काम नहीं चलेगा। चोट के हिसाब से ऐसा विचार रखना पड़ेगा, जिससे उसका दर्द अपने भीतर खिंच सके।

संतोषी लाल और जीवानन के परिवार के बीच तीन पीढ़ियों से दोस्ती चली आ रही थी। उसी संबंध के अनुसार जीवानन के पिता और संतोषी लाल के बीच भाईचारे का संबंध था। जीवानन के पिता रघुवीर और उनके भाई संतोषी लाल को 'दोस' कहते थे। संतोषी लाल भी रघुवीर दोनों भाइयों को दोस ही कहते थे। उसी देखादेखी जीवानन अपने संबंध 'काका' और पिता के संबंध 'दोस' को एक साथ जोड़कर उन्हें 'दोसकाका' कहता था। परखकर संतोषी लाल बोले:

"बौआ जीव, ऐसा हुआ क्यों?"

किसी रोग के आने से पहले कुछ ऐसे लक्षण भी आने लगते हैं, जो जीवन के लिए पहला भी हो सकते हैं और दूसरा-तीसरा भी, लेकिन होते जरूर हैं। इसलिए संतोषी लाल उसे ठीक-ठीक पकड़ने के लिए बोले।

जीवानन बोला:

"दोसकाका, बधार में चमकता पानी देखकर आँखों में पहले चौंह आया। चौंह आते ही आँख थोड़ी-बहुत चुँधियाने लगी। जैसे-जैसे आँख

चुँधियाई, वैसे-वैसे मन भी चुँधियाने लगा। और जैसे-जैसे मन चुँधियाया, वैसे-वैसे आँखों में चकाचौंध उठने लगी। उठते-उठते इतनी उठ गई कि आँख ही बंद हो गई। एकाएक दुनिया अँधेरी हो गई। अँधेरे में क्या हुआ, अच्छी तरह याद नहीं है।"

जीवानन की बात को संतोषी लाल ने ध्यान से सुना। सोचने के बाद मन में उठा कि पहले जीवानन को समतल जमीन पर ले जाना जरूरी है। यदि गड्ढे-खड्डे, मेड़-धूर के फेर में पड़ेंगे, तो जीवन बेठिकाना हो जाएगा। जीवन तो तभी शुरू होता है, जब कोई बुरी वृत्ति से हटकर अच्छी वृत्ति की ओर प्रवृत्त होता है। यदि ऐसा नहीं होगा, तो स्वर्ग-नरक केवल कथा-कहानी बनकर रह जाएगा। समतल भूमि पर कदम-दर-कदम चलने वालों से यदि थोड़ी-बहुत भूल-चूक भी हो जाए, तो न वे पिछली ढलान की तरह जोर से गिरते हैं और न गड्ढे-खड्डे की टूटी मेड़ की तरह ढहते-डगमगाते हैं।

इसलिए संतोषी लाल ने जीवानन को समतल जमीन पर खड़ा करते हुए कहा:

"बौआ जीव, तुम्हारा तो एक बेटा दिल्ली में रहता है। सुनता हूँ, खूब पैसा कमाता है। तब तुम्हें किस बात की इतनी चिंता हुई कि जीवन की ओर देखते ही मन चुँधिया गया?"

धीरे-धीरे जीवानन को इतना होश आ गया था कि घर अपने पैर से जा सके। हुबियाते हुए जीवानन बोला:

"दोसकाका, मरते समय यदि किसी ने देखा तो आपने देखा, नहीं तो मेरा घर पहुँचना कहाँ हो पाता।"

जीवानन को आगे बढ़ाते हुए संतोषी लाल बोले:

"बौआ जीव, तुम्हारा तो पाँच लोगों का परिवार है। कोई हाथी-घोड़ा हो कि देह छोड़कर खाओगे? मनुष्य हो। हुआ तो एक आदमी पर

एक किलो अन्न का खर्च। उसके लिए इतना शोक करने का क्या काम?"

संतोषी लाल का विचार सुनकर जीवानन का मन राग-विराग के बीच भटकने लगा। लेकिन अपने को चेतावनी देते हुए बोला:

"काका, आप मेरा एक हाथ पकड़ लीजिए। जैसे ही तिलमिलाने लगूँ, दोनों हाथ से पकड़कर बैठा दीजिएगा।"

संतोषी लाल बोले:

"इस तरह अपने को हारे हुए नटुआ की तरह क्यों हिया हार रहे हो? यदि घर तक चलने की शक्ति देह में लग रही है, तो चलो। तुम्हारे पीछे-पीछे नजर गड़ाए मैं भी चल रहा हूँ।"

संतोषी लाल की बात सुनकर जीवानन उठकर खड़ा हुआ और बोला:

"दोसकाका, जब आप साथ में हैं, तब घर पहुँच ही जाऊँगा। चलिए।"

घर की ओर चलते ही संतोषी लाल ने अपने मन को भी चेतावनी दी कि रास्ते में केवल जीवानन के चलने और उसकी चाल पर नजर रखनी है। यदि बातचीत करने लगूँगा और बात में बह जाऊँगा, तब अपनी चाल भूल जाऊँगा। जीवानन को चेताते हुए बोले:

"बौआ जीव, रास्ते में बातचीत बंद रखना। यदि तुम्हारा मन बोलने में बह गया या मेरा मन सुनने में बह गया, तब तुम बीच में गिर पड़ोगे। न तुम समझोगे और न मैं समझूँगा।"

संतोषी लाल का घर पहले पड़ता था। घर के पास पहुँचते ही जीवानन बोला:

"दोसकाका, जब आप यहाँ तक पहुँचा दिए, तब अपने यहाँ भी पहुँच ही जाऊँगा।"

जीवानन को आगे किए हुए संतोषी लाल दरवाजे पर पहुँचे। दरवाजे पर पहुँचते ही उन्होंने सोचा कि पहले जीवानन को कुछ खिलाना-पिलाना जरूरी है। पूछते हुए बोले:

"जीव, कुछ खाने-पीने की इच्छा लग रही है?"

जीवानन बोला:

"नाश्ता करके निकला था, दोसकाका, इसलिए खाने की भूख नहीं है। थोड़ा पानी पिऊँगा और चाय पिऊँगा।"

जीवानन के 'पानी-चाय' सुनकर संतोषी लाल ने पत्नी को आवाज दी। मन-ही-मन सोचा कि पत्नी के सामने अभी सीधे पानी-चाय की चर्चा करना ठीक है। यदि पहले घटना की चर्चा करूँगा, तो आदि-अंत किए बिना न अपना मन मानेगा और न पत्नी ही सुनने से बाज आएगी। जैसे ही ऐसा होगा, देर होगी। और जितनी देर होगी, उतनी देर में जीवानन चंगा होगा।

पत्नी को देखते ही संतोषी लाल बोले:

"पहले लोटे में पानी लेकर आओ। बाद में चाय बनाना।"

सुदामा भी बिना किसी टोक-टाक के आँगन गईं। इसी बीच संतोषी लाल ने जीवानन को ध्यान से देखा, तो लगा कि यदि सोलह आना नहीं, तो बारह आना मन जरूर सामान्य हो गया है। इसलिए अब बातचीत करने में हर्ज नहीं। लेकिन तुरंत लगा कि जीवानन की ओर से बात उठाना ठीक नहीं होगा। कारण यह कि चोट खाए आदमी का मन चोट से चोटिया गया रहता है। इससे फिर चोट उभरने की संभावना रहती है। ऐसा न हो, इसलिए अपनी ओर से ही बात उठाऊँ।

तभी सुदामा लोटे में पानी और गिलास लेकर पहुँच गईं। चौकी पर लोटा-गिलास रखकर आँगन की ओर लौटती हुई बोलीं:

"जब तक आप लोग पानी पीएँगे, तब तक चाय भी बन जाएगी।"

गैस चूल्हे की चाय थी, तुरंत बन गई। दो कप में दोनों के लिए चाय लेकर वे दरवाजे पर पहुँचीं। कप रखकर सुदामा सामने खड़ी हो गईं। वैसे सुदामा ने कान से कुछ नहीं सुना था, लेकिन मन में इतना चमक ही गया था कि कुछ बात जरूर है।

जीवानन के दो घूँट चाय पीने के बाद संतोषी लाल ने पूछा:

“अब मन हल्का लग रहा है न?”

तीसरा घूँट चाय घोंटते हुए जीवानन बोला:

“दोसकाका, जबसे आप सामने पड़े, तबसे जैसे शोक का रोग भागने लगा और जीवन का जोग जागने लगा। वह अभी भी जाग ही रहा है।”

जीवानन की बात सुनकर संतोषी लाल के मन में उठा कि बेचारे के मन की मटियाई हुई भूमि अब उर्वर हो रही है। इसलिए ऐसे बीज की जरूरत है, जिसके पड़ते ही पुष्ट अंकुर निकले। पुष्ट अंकुर निकलेगा, तो पुष्ट पौधा भी होगा ही। संतोषी लाल बोले:

“जिस परिवार की चिंता से तुम चित्तहीन हो गए, जीव, वह चिंता मुझे कहाँ दिखती है।”

संतोषी लाल का विचार सुनकर जीवानन को पिछली बात याद आ गई कि बेटा खूब कमाता है। वह बोला:

“दोसकाका, आपने कहा कि बेटा खूब कमाता है। सुनता मैं भी हूँ। लेकिन बहुत कमाई जबसे खाएँगे, तबसे देह भले फूलने लगे, मन तो कुम्हलाएगा ही न?”

जीवानन का विचार सुनकर संतोषी लाल का मन ठिठका। ठिठकते ही विचार उठा कि यदि अभी जीवानन को ठकुआया भोजन कराऊँगा, तो वह अधिक ठिठकेगा। बोले:

“बौआ जीव, जिस गाँव में हम लोग हैं, वह अब नष्ट हो जाएगा!”

आगे की बात कहने के लिए संतोषी लाल मन-ही-मन विचार की लड़ी सुलझा ही रहे थे कि बीच में जीवानन चौंकते हुए बोला:

"वह क्या, दोसकाका?"

जीवानन के चौंकने से संतोषी लाल का मन हिल गया। अभी जिस स्थिति को देखकर जीवानन अचेत हुआ, उसी स्थिति की चर्चा करना अधिक जरूरी है। अभी यदि दूसरी-तीसरी स्थिति की चर्चा करूँगा, तो वह उतनी समयोचित नहीं होगी। फिर तुरंत संतोषी लाल के मन में आया कि किसी रोग का लक्षण समझाने के बाद यदि रोगी का इलाज हो, यानी दवाई-दारू हो, तो वह कारगर होगा। इसलिए यदि विस्तार से नहीं, तो संक्षेप में कुछ कह देना अच्छा होगा। वे बोले:

"बौआ, जिसके प्रभाव से इतनी बड़ी समस्या गाँव में उपस्थित हुई है, उसकी जड़ जब तक नहीं समझोगे, तब तक रोग का आधा-अधूरा निदान ही समझोगे।"

सिर हिलाते हुए जीवानन बोला:

"वह कैसे समझूँगा, काका?"

जीवानन का सँभलता हुआ मन देखकर संतोषी लाल के मन में भी विचार का संतोष जगा। बोले:

"बौआ, सम स्थिति को विषम बनाने के दो कारण हैं। एक मानवीय और दूसरा प्राकृतिक। अपने यहाँ जो स्थिति उपस्थित हुई है, वह मानवीय है।"

संतोषी लाल अपने विचार से बोल रहे थे, लेकिन जीवानन उस रूप में नहीं समझ रहा था, जिस रूप में संतोषी लाल समझाना चाहते थे। बिना समझे विचार को जैसे कोई जिज्ञासु कान के साथ मुँह खोलकर भी पीना चाहता है, वैसी ही स्थिति जीवानन की थी। वह संतोषी लाल के विचार-प्रवाह को रोक रहा था। इसी बीच जीवानन बोला:

"काका, अच्छी तरह नहीं समझ पा रहा हूँ।"

संतोषी लाल के मन ने भी स्वीकार किया कि हो सकता है, जीवानन अच्छी तरह नहीं समझ पा रहा हो। विचार को चीर-फाड़कर संतोषी लाल बोले:

"बौआ, समस्या तो अनेक गाँवों में है और नई-नई आ भी रही है। लेकिन अभी उतने में मत जाओ। अभी केवल दो समस्याओं के विषय में समझो।"

जीवानन बोला:

"अच्छा कहा, काका। मेरा भी बहुत देर से घर से निकलना हो गया। पत्नी राह देख रही होगी।"

"ठीक है। तुरंत अपने विचार को विराम देता हूँ।"

बोलने के क्रम में संतोषी लाल बोल गए कि तुरंत विराम देता हूँ, लेकिन तत्काल मन में उठा कि किसी विचार या काम की एक सीमा तो बनानी पड़ती है। यदि सीमा बनाकर नहीं बोलेंगे, तो वह पोखर की उस केचली घास की तरह हो जाएगा, जो बिना धरती छुए ऊपर-ऊपर पनपती भी है और फूलती-फलती भी है।

अपने विचार को सीमा पर खड़ा करते हुए संतोषी लाल ने पूछा:

"बौआ जीव, अपने गाँव का आँट-पेट समझते हो?"

संतोषी लाल के मुँह का 'आँट-पेट' जीवानन अच्छी तरह समझ नहीं पाया। लेकिन यदि किसी वक्ता के विचार के बीच भाव या अभाव खटक जाए, तो उसे समझ लेना चाहिए। नहीं तो एक जगह से निकलने के बाद धारा जैसे कोसों दूर हट जाती है, वैसे ही विचारधारा भी बहती चली जाती है।

जीवानन बोला:

"दोसकाका, आँट-पेट नहीं समझा।"

बोलने के क्रम में जो धारा प्रवाहित होती है, उसमें यदि कोई विघ्न-बाधा लगे, तो उसे तुरंत दोहराकर समझ लेना आसान होता है। यदि पूरी धारा बह जाने के बाद समझना चाहेंगे, तो वह दूसरा मोड़ भी ले सकती है। संतोषी लाल बोले:

"रकबे के हिसाब से अपना गाँव जितना है, उससे अधिक लोग बस रहे हैं। परिवार पर दस कट्ठा जमीन भी नहीं है। यदि सभी परिवारों के पास रकबे के हिसाब से एक समान जमीन रहती, तब वह समगम होता। पर ऐसा है नहीं। किसी के पास अधिक है, किसी के पास कम।"

संतोषी लाल के विचार को जीवानन ने मन-ही-मन जमीन पर उतारकर देखा, तो लगा कि दोसकाका सोलह आना सच बात बोल रहे हैं। सिर हिलाते हुए बोला:

"हाँ, यह तो है ही।"

जीवानन का समर्थन पाकर संतोषी लाल समझ गए कि अपने मन का विचार जीवानन के मन में चुभा है। चुभे हुए विचार को और गहरा करते हुए बोले:

"जैसे गाँव की जमीन और लोग सम होते हैं, वैसे ही खेत और उसकी उपज भी होती है। इसलिए लोग कहते हैं कि यह प्रति कट्ठा या प्रति बीघा उपज हुई।"

बीच में जीवानन बोला:

"हाँ, ऐसा तो कहा ही जाता है। मैं भी और आप भी कहते हैं।"

विचार की डोर थामते हुए संतोषी लाल बोले:

"इस हिसाब से तो गाँव ही नष्ट हो रहा है!"

जैसे जीवानन की कोई सूखी नस अपना रूप पकड़ चुकी हो और

उसमें खून का प्रवाह अपनी गति से बहने लगा हो, वैसा ही हुआ। वह बोला:

“थोड़ा-बहुत समझ भी रहा हूँ और थोड़ा-बहुत नहीं भी समझ रहा हूँ।”

जीवानन के मुँह से ‘थोड़ा-बहुत’ सुनकर संतोषी लाल के मन में भी थोड़ा विश्वास जगा कि अब उसे अच्छी तरह समझाया जा सकता है। मन के विचार को प्रवाहित करते हुए संतोषी लाल धाराप्रवाह बोले:

“अभी अधिक समय भी नहीं है कि अधिक बात कहूँ। इसलिए केवल दो बातें कहता हूँ। एक वह, जिसका मर्म देखकर तुम मर्माहत हुए हो। दूसरी वह, जिससे तुम भी और गाँव-समाज भी मर्माहत हुआ है।”

कान खड़े करते हुए जीवानन बोला:

“अच्छी बात कही, दोसकाका।”

संतोषी लाल बोले:

“गाँव की आधी जमीन, जिससे उपज होती थी, उपज ही के लोभ से नष्ट हो गई। पचास वर्ष पहले कोसी नहर और धारा के फाटक का पुल बना। पचास वर्ष पार करने के बाद भी वह काम की चीज है। उससे नहरें बनने लगीं। कुछ बनी भीं। लेकिन जब खेत और उपज का हिसाब जोड़ोगे, तब क्या निकला? अभी अधिक बात नहीं, इतना ही।”

संतोषी लाल की बात सुनकर जीवानन के भकुआए हुए मन में भोर के तारे जैसी एक चमक उठी। वह बोला:

“दूसरी क्या हुई?”

जीवानन की जिज्ञासा देखकर संतोषी लाल बोले:

“दूरदर्शिता के अभाव से शासन-प्रशासन भटका हुआ है। यह पूर्ववर्ती विचार का नकारात्मक रोग है। इससे जो बाँध-सड़क बनते हैं, वे

भी असर डालते हैं। इसी प्रभाव से तुम्हें जीवन भरा हुआ, डूबा हुआ लग रहा है।”

जीवानन को जैसे भक से कुछ खुल गया हो। बोला:

“दोसकाका, गाँव पर अंदेशा हो रहा होगा। अभी जाता हूँ। दूसरे दिन और विचार समझूँगा। लेकिन अभी चलूँ कैसे, यह जरा कह दीजिए।”

जीवानन का प्रश्न सुनकर संतोषी लाल ने नजर उठाकर चारों ओर देखा। उन्हें लगा कि किसान के बीच बड़ा फेर उपस्थित हो गया है। खेती के शुरुआती समय में ही भारी संकट आ गया है। लोग धान का बीज गिराए हुए थे। कुछ-कुछ लोगों की रोपाई भी हुई थी। एकाएक इतनी वर्षा हुई कि बीज भी नष्ट हुआ और खेत भी डूब गया। यदि कम किसानों के साथ ऐसा हुआ रहता, तब तो बाकी किसानों से भरपाई हो जाती, लेकिन यह तो गाँव-गाँव का फेर है।

संतोषी लाल बोले:

“नहर की छहर और पक्की सड़क के घेरे से जो जमीन डूब गई है, उसे अभी पीछे छोड़ो। पहले बची हुई जमीन को आबाद करो। बाद में जैसा समय होगा, वैसा देखा जाएगा।”

हिया हारकर जीवानन बोला: “दोसकाका, अच्छी जमीन समझकर एक ही जगह बीज गिराया था। वह छाती भर पानी में डूब गया। दूसरे-तीसरे बधार की जमीन कैसे आबाद करूँगा?”

मुस्कुराते हुए संतोषी लाल बोले:

“तुमसे भी बड़ा फेर अपने ऊपर आ लगा है। लेकिन अंत-अंत तक प्रयास थोड़े छोड़ देंगे।” ❑

आशा पर पानी फिरा

☰

शाम के समय ही विचार किया कि कल झंझारपुर का हाट है, हाट करने जाऊँगा। परिवार में रहता हूँ, इसलिए परिवार का काम करना पड़ता है। जाने से पहले पत्नी से घर की जरूरत और वस्तु-सामान समझ लूँगा कि क्या-क्या लेना पड़ेगा। फिर विचार आगे बढ़ा। विचार के आगे बढ़ते ही मन में उठा कि तीन महीने से जीवछ भाई से भेंट नहीं हुई है, इसलिए लौटते समय उनसे भी मिलता आऊँगा।

गाँव के हाट की तरह झंझारपुर का हाट नहीं लगता। गाँव का हाट केवल शाम के समय तीन-चार घंटे लगता है। उसी बीच खरीदने-बेचने वालों का लेन-देन चलता है, झगड़-झाँटी भी चलती है और निपटती भी है। लेकिन झंझारपुर हाट वैसा नहीं है। वहाँ भोर से ही खरीद-बिक्री के साथ लेन-देन, सब कुछ शुरू हो जाता है। हाट बड़ा भी है। दूर-दूर से व्यापारी आते हैं। हाट से एक दिन पहले ही शाम से व्यापारियों और सौदा-सामान का आना शुरू हो जाता है। हाट की जगह भी बँटी हुई है। अनाज-पानी का एक भाग, साग-सब्जी का दूसरा भाग, छोटे-मोटे सामान का तीसरा भाग। इसी तरह हाट अपना-अपना रूप लेकर फैला रहता है।

सवेरे-सवेरे नाश्ता करके हाट की तैयारी में जुट गया। साइकिल से जाना था। बारह-एक बजे तक घूमकर लौट आऊँगा, इसलिए नहाया नहीं। वैसे नहाने और न नहाने में भी अंतर है। वह अंतर काम के हिसाब

से है। कुछ काम और उनके समय नहाने के बाद उपयुक्त होते हैं, और कुछ काम तथा समय नहाने से पहले। अपने लिए यही ठीक लगा। कारण यह कि साइकिल से चलने पर धूप और हवा लगती है, शरीर में थकान भी होती ही है। उससे न खाने में रुचि रहती है और न आराम करने में। वैसे आराम भी अपने-अपने काम के हिसाब से होता है। कुछ काम ऐसे हैं, जो दिन भर चलते हैं, कुछ ऐसे, जो रात में ही चलते हैं और कुछ ऐसे, जो दिन-रात दोनों में चलते हैं।

इसमें भी अपने-अपने विचार और काम का हाथ रहता है। जोगी काका हैं, जो दुनिया को असार समझकर दूसरों के विपरीत दिशा में चलते हैं। मतलब यह कि जब दुनिया के लोग अशांत रहते हैं, तब वे शांत रहते हैं और जब दुनिया के लोग शांत रहते हैं, तब वे अशांत हो जाते हैं। उसका कारण क्या है, यह तो असली जोगी काका ही समझते होंगे। हम लोग तो अनुमान से ही कुछ समझ सकते हैं। उसके साथ यह भी है कि ऐसे लोग भी हैं, जो जोगी काका की तरह नियम-कायदा बनाकर सोचते भी हैं, चलते भी हैं और जोगी काका के प्रशंसक भी हैं। प्रशंसक और प्रशंसक में भी अंतर है। कुछ रक्षक की प्रशंसा करने वाले हैं और कुछ भक्षक की भी प्रशंसा करते हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता कि वे नहीं हैं। वे सब दिन से हैं, और सब दिन क्या, त्रेता युग के रावण से भी पहले से चले आ रहे हैं। लेकिन इसलिए उनके वंश को रावण का ढोलबज्जा वंश कहना उचित नहीं होगा। फिर भी इतना तो मानना ही पड़ेगा कि जब रावण का राज था, सोने की लंका थी, तब जिन ढोलबज्जों की बहाली हुई होगी, उनमें यदि वे फिट उम्मीदवार रहे होंगे, तभी उनकी बहाली हुई होगी और दूसरे-तीसरे छँट गए होंगे।

दुकानों के सामान की सूची और रुपए मोड़कर जेब में रख लिए। काम तो बाकी था ही, लेकिन मन शांत नहीं हुआ, यह भी नहीं कहा जा सकता। घर से साइकिल निकालकर जाँच-पड़ताल की कि कोई पार्ट

गड़बड़ तो नहीं है। वैसा कुछ नहीं था। जैसे पिछले दिन साइकिल रखी थी, वैसी ही थी। दोनों चक्कों में हवा भी वैसी ही थी। फिर भी अंगूठे से दबा-दबाकर देख लिया। लोहे के पार्ट-पुर्जे तो जीवन भर वैसे ही रहेंगे, लेकिन टायर-ट्यूब तो वैसा नहीं है। वह हवा-पानी का है। किधर से कब हवा निकल जाए, इसका क्या ठिकाना। लेकिन कोई गड़बड़ नहीं थी। साल भर पहले खरीदी हुई साइकिल अब भी जवानी की चाल में थी, इसलिए सवारी की शंका भी मन में नहीं हुई।

वैसे साल भर की साइकिल को भी कोई झारखंडी पुरानी कह देता है, लेकिन वह अपनी-अपनी चाल पर है। जो जितनी धुमसाही से चढ़ा होगा, उसकी साइकिल वैसी हो गई होगी। किसानी जीवन में जितनी साइकिल की सवारी की जरूरत है, उतना तो चढ़ता ही हूँ। साइकिल पर चढ़ते ही सवारी से लेकर काम तक का मन सिमट गया। सवारी अच्छी है और काम की सूची जेब में है। निबटा हुआ काम देखकर मन शांत हो गया। मन शांत होते ही जीवछ भाई से भेंट करने का विचार फिर उठ गया। तीन महीने से भेंट नहीं हुई थी। वैसे जीवछ को 'जीवछ भाई' विवाह के बाद कहने लगा। उससे पहले, जब केजरीवाल हाई स्कूल, झंझारपुर में हम दोनों साथ पढ़ते थे, तब मैं भी जीवछ ही कहता था और वह भी मुझे रमेशबा कहता था। कहेंगे कि विवाह में ऐसी कौन-सी बाधा उपस्थित हो गई कि जीवछ 'जीवछ भाई' हो गए। बाधा कोई नहीं हुई। हुआ इतना ही कि घर से कोस भर हटकर जीवछ भाई का गाँव पश्चिम में है और अपना गाँव पूरब में। मेरा विवाह जीवछ भाई के गाँव में हुआ।

जीवछ भाई का परिवार और मेरे ससुर का परिवार सटा हुआ है। सामाजिक संबंध दियादी परिवार जैसा है। इसी से पत्नी जीवछ को छोटा होने के कारण भैया-भैया कहती रहती थी। उसी बहाने जीवछ 'जीवछ भाई' हो गए।

हाट का काम कम ही था, करीब आधे घंटे का। गाँव से निकलते

ही मन में हुआ कि क्यों न पहले जीवछ भाई से ही मिल लिया जाए। लौटते समय गरमी से तप गया रहूँगा, उस पर दोपहर का समय होगा।

जीवछ भाई पर नजर अटक गई। मन में पिछली भेंट से पहले का जीवन उठ गया। एकाएक मुँह से अपने-आप फूट पड़ा:

"वाह रे जीवछ भाई! जीवन को इस तरह लगाकर पकड़ लिया कि अभी तक प्राणपण से अडिग हैं। जैसे बचपन में कहा करते थे, 'अपना जीवन अपने हाथ, अपना विचार अपने साथ।' उसे अभी तक निभाए हुए हैं!"

अपने ससुराल और जीवछ भाई के गाँव के पास पहुँच गया। अब घर के टोले की ओर रास्ता फूटेगा। मन असमंजस में पड़ने लगा कि एक तो ससुराल, उस पर लंगोटिया संगी जीवछ भाई। खाली हाथ जाना ठीक नहीं होगा। जब विवाह नहीं हुआ था, उस समय स्कूल से लौटते हुए हम दोनों रास्ते के किनारे पाखड़ के पेड़ के पास गुल्ली-डंडा खेलते थे। अब वह बात कहाँ रही। सबके परिवार में बाल-बच्चे हो गए। मन असमंजस में ही था कि सवारी काटकर, यानी ससुराल की दिशा छोड़कर, आगे बढ़ गया। मन को जीवछ भाई के परिवार और अपने ससुर के परिवार ने इस तरह पकड़ लिया कि साइकिल की कौन कहे, हाथ का हैंडल भी भूल गया। जब उस गाँव से निकलकर सीमा किनारे के पीपल के पेड़ के पास पहुँचा, तब उदास मन अचानक खुला। खुलते ही मन में उठा, जा! जीवछ भाई का गाँव और अपना ससुराल दोनों कट गया! जीवछ भाई से तीन महीने से भेंट नहीं हुई थी, लेकिन अपने ससुराल गए भी तो तीन महीने हो ही गए थे।

सीमा पार करते ही मन में हुआ कि भगवान जो करते हैं, अच्छा ही करते हैं। यदि अच्छा नहीं करते, तो मन में ऐसा विचार क्यों आता कि जब एक साथ दो-चार गाँव के दो-चार काम हों, तो पहले अंतिम गाँव का काम करने की सूझती है? पास वाले गाँव से काम करने का सुझाव क्यों

नहीं आता? अस्थिर होते मन में उठा, अच्छा ही हुआ, हाट का काम पहले हो जाएगा। मतलब यह कि सालियों-सलहजों का मुँह तो इतना बंद कर ही सकता हूँ कि यदि कोई कहेगी भी कि बहुत दिनों बाद आए हैं, तब कह दूँगा कि काम में इतना उलझा हूँ कि दाढ़ी-बाल बनवाने तक की फुरसत नहीं मिलती। और इस आने का कोई मान नहीं, न आप सबको अधिक साग-सब्जी का इंतजाम करना है और न मुझे ही अधिक देर रुकना है। देख रही हैं, हाट से आ रहा हूँ, चीज-वस्तु साथ में है।

झंझारपुर पहुँचते ही जीवछ भाई दिखे। आगे-आगे तेजी से दक्षिण की ओर जा रहे थे। पहले थोड़ा धकमकाया, हिचका। कारण यह कि वे पैदल थे, थोड़ा अधिक आगे थे और मैं साइकिल से उतना ही पीछे। लेकिन जैसे-जैसे पास पहुँचा, वैसे-वैसे हिचक कम होती गई। फिर भी एक गड़बड़ी हो ही गई। गड़बड़ी यह हुई कि पहाड़ पर बैठा मन धरती पर उतर आया। मुँह से निकल गया:

“क्या रे जीवछा, तू भी हाट ही जा रहा है?”

मन-ही-मन मैं चालीस वर्ष पहले का केजरीवाल हाई स्कूल का विद्यार्थी बन गया था।

पीछे से टोकने पर जीवछ ने अच्छी तरह पहचाना या नहीं, यह तो वे जानें, लेकिन पहचानकर या बिना पहचाने ही जीवछ भाई बोले:

“तू सब दिन एक ही रंग रह गया।”

तब तक साइकिल जीवछ भाई के पास पहुँच गई थी, इसलिए मन बदलने लगा। फिर भी इतना तो मन में उठ ही गया था कि यदि बचपन से बुढ़ापे तक एक ही रास्ता पकड़कर जीवन निभ जाए, तो खराब ही क्या हुआ। हाँ, एक विचारणीय प्रश्न है कि जीवन कैसा? मुँह से निकला:

“मनुष्य कोई गिरगिट है क्या, जो एक ही दिन में सात रंग बदलेगा।”

साइकिल से उतरकर जीवछ भाई के मन का चेहरा निहारने लगा। इसी बीच जीवछ भाई बोले:

"रमेश, तुम्हारा ससुराल जहाँ हो, हमारे गाँव में ही क्यों न हो, लेकिन यदि अपना गाँव समझते तो बारात बनकर बरियाती निभाते?"

जीवछ भाई 'यौ' से उतरकर 'हौ' पर आ गए। मुझे भी रास्ता मिल गया। रास्ता यह कि 'रौ' तक पहुँचने में मैं बस एक ही कदम पीछे हूँ। भाई, जब बचपन के संगी हैं, तब यदि बचपना नहीं आया तो वह इतिहास का पन्ना हो जाएगा न। तब तक झंझारपुर थाना के पास पहुँच गए। थाना को देखते ही एक घटना याद आ गई। घटना यह कि एक गाँव में चूल्हे की आग से आग लग गई। खूब सामान जला। यही थाना जाँच में पहुँचा और पूछा:

"आग लगाने वाले को देखा था?"

घरवाले ने कहा:

"नहीं।"

"किसी पर शक-सुभा?"

"नहीं।"

"किसी से दुश्मनी?"

घरवाला थकथका गया।

इसी बीच जोर से पूछा गया:

"बोल न!"

घरवाले ने कहा:

"हाँ।"

"नाम बोल।"

घरवाले ने पाँच लोगों के नाम बताए। वे पाँचों अगलगी के केस में

फँस गए। थाना की ओर जीवछ भाई ने भी देखा और मेरी नजर भी गई। मैंने कहा:

"जीवछ, अंग्रेज के समय जो खपरैल वाला घर बना था, वह अब भी वैसा ही है। दुनिया बदल गई, लेकिन थाने का खपरैल वैसा का वैसा है!"

मेरी बात सुनकर जीवछ भाई को जैसे कसैलापन लगा। कसैले स्वर में बोले:

"दूसरों की टेढ़ कब तक देखते रहोगे। देखना है तो अपनी टेढ़ देखो, जिसे लोग टेढ़ापन कहते हैं!"

तब तक हाट की आवाज की गुनगुनाहट भी कान में आने लगी थी और अपने जीवन की बात भी बाकी थी। इसलिए चारों ओर से मन को समेटकर मैंने कहा:

"जीवछ, बहुत दिनों का कुशल-समाचार भी बाकी है और हाट तक रहना भी है। चलो, किसी चाय की दुकान पर चाय भी पीते हैं और कुशल-क्षेम भी हो जाएगा।"

जैसे मैंने जीवछ के मन की ही बात कह दी हो, वैसे ही मुस्कुराकर जीवछ बोले:

"जिस दुकान पर अधिक भीड़ होगी, उसमें नहीं। जिसमें कम भीड़ होगी, उसे ठीक करके चलो।"

वही हुआ। चाय की दुकान के एक बेंच पर हम दोनों बैठ गए। इसी बीच दुकान के ग्राहकों के बीच इस साल की बारिश की चर्चा चल रही थी। सुपौल का एक व्यापारी और समस्तीपुर का एक व्यापारी साथ में चाय भी पी रहे थे और बातचीत भी कर रहे थे। दोनों को बाहरी समाचारों का जानकार समझकर मैं सुनने लगा। समस्तीपुर के व्यापारी बोले:

"इस बार मसाला और साग-सब्जी कुछ दिन महँगी रहेगी। साग-

सब्जी तो अगली खेती तक महँगी रहेगी, लेकिन मसाला साल भर महँगा रहेगा।"

सुपौल के व्यापारी मन-ही-मन बारिश के उपद्रव पर नजर दौड़ा रहे थे, लेकिन विचार में मजबूती लाने के लिए पूछा:

"वह क्यों?"

समस्तीपुर के व्यापारी ने कहा:

"ऐसी बारिश पहले ही पकड़ ली कि आश्विन तक पकड़े रही। इससे बरसाती सारी फसलें मारी गईं।"

समस्तीपुर वाले व्यापारी का दुखनामा सुनकर सुपौल वाला व्यापारी बोला:

"आपके इलाके से कम क्षति क्या हमारे इलाके में हुई? धान रोपने के लिए जितना बीज तैयार हुआ था, सब बिचड़े में ही सड़ गया। इससे छोटे गृहस्थ तो कुछ अपने सगे-संबंधियों के यहाँ से और कुछ दूसरे इलाकों से खरीद-खरीदकर लाकर आबाद कर पाए। लेकिन बड़े गृहस्थ सब मुँह ताकते रह गए।"

दोनों व्यापारियों की बात को मैंने तो समाचार की तरह समझा, लेकिन जीवछ भाई जैसे उसमें अपना दुख घोलने लगे। कभी उनका चेहरा कसैला-सा होता, कभी मधुराया-सा। चेहरा रंग बदलने लगा। चेहरे का रंग बदलने का असली कारण तो जीवछ भाई ही समझेंगे, लेकिन मुझे अच्छा नहीं लगा। अनुमान में इतना जरूर आया कि जीवछ भाई किसी-न-किसी सूत्र से जरूर बँधे हुए हैं, जिससे उनका मन मलिन हो रहा है। लेकिन वह तो समझने के बाद ही समझूँगा। अभी तो जैसे मैं, वैसे ही जीवछ भाई बराबरी की सतह पर हैं। इसलिए यदि कुछ कहना है, तो बराबरी की समझ से सोचकर कहूँगा। यदि नहीं कहना होगा, तो बराबरी से सुनूँगा। इसके लिए बेकार में मन को फीका-कड़वा क्यों करूँ।

इसी बीच दोनों व्यापारी खेती-बाड़ी से आगे बढ़कर अपने व्यापार की बात व्यापारी-भाषा में शुरू कर चुके थे। हम दोनों भी निश्चिंत हुए।

निश्चिंत होते ही जीवछ भाई ने कहा:

"रमेश, अब हम लोग एक अवस्था पर पहुँच गए हैं। इसलिए जिसे लोग लोक-लाज भी कहते हैं और सयानी समझ भी, उसे तो निभाना पड़ेगा न।"

मन चाय पीकर सामान्य हो चुका था। इसलिए बीच में बोल पड़ा:

"हाँ, वह तो कहा ही जाता है। उसे कौन काटेगा।"

मेरे सधे हुए विचार को सुनकर या क्या, जीवछ भाई अपने मुड़े हुए मन से बोले:

"रमेश, आप गाँव के जमाई हैं। गाँव-गाँव के लोग हाट के काम से आए हुए हैं। यदि कोई सुन लेगा तो मन-ही-मन दो ही तरह की बात कहेगा। या तो पढ़ा-लिखा गधा है, या दोनों के बीच कोई मतांतर हुआ है, इसलिए गाली-गलौज कर रहा है।"

मुँह से तो कुछ बोलने का साहस नहीं हुआ, लेकिन सिर हिलाते हुए इशारे में कहा:

"हाँ, वह तो कहेगा ही।"

जीवछ भाई हारे हुए नटुआ की तरह बकियाने नहीं लगे, बल्कि अपने विचार को आगे बढ़ाते हुए बोले:

"यह सत्य बात है कि हाई स्कूल में हम दोनों संगी बनकर गुल्ली-डंडा खेलते थे और लत्ती बाबू के हाथ से अंग्रेजी विषय में मार भी खाते थे। लेकिन अब वह इतिहास का पन्ना पकड़ चुका है। गाँव में विवाह होने से दूसरे रंग का संबंध जरूर बना। पर एक अवस्था भी तो हो ही गई। इसलिए अब अपने को सचेत करते हुए चलना अच्छा है।"

जैसे स्थिर पानी भी धारा पाते ही धारियाकर धारा बनकर दौड़ने लगता है, वैसे ही मेरा मन जीवछ भाई के विचार की धारा में उतरकर दौड़ने लगा। मैंने कहा:

“जीवछ भाई, आपने अपनी सीमा तक का विचार दे दिया। अब दुनियादारी की बात छोड़िए, अपना हाल-चाल कहिए।”

‘अपना हाल-चाल’ सुनते ही हारे हुए जुआरी का पासा जैसे जीत की ओर बढ़ता है, वैसे ही बात का पासा पलट गया। पलटने का कारण यह था कि जीवछ भाई का यह साल पानी में डूब गया था। इससे उनके जीवन की आशा पर पानी फिर गया था। आगे का जीवन जोड़ने की समस्या सामने आ गई थी, जिससे उनके मन में मलिनता भर गई थी।

जीवछ भाई बोले:

“पिछले साल हवा उठी कि किसान के जीवन में क्रांति आएगी, दो गुनी वृद्धि होगी। मैं हमेशा क्रांति का पुजारी रहा हूँ। सरकार के विचार का समर्थन करते हुए सहयोग करने के लिए आगे बढ़ा। वैसे मन में होता था कि जब राजनीति से हट गया हूँ, तब बेकार में क्यों सरकार की पार्टी बनूँ या विरोधी बनूँ। लेकिन हवा में बह गया।”

मन में उठा, जीवछ भाई जैसा स्थिर आदमी, जो बचपन से जैसे एकचलिया है, वैसे ही एक विचार वाला भी है। लेकिन जब वह भी बह गया, तब इसका कोई खास कारण जरूर है। वह तो सुनने के बाद ही समझ सकता हूँ। मैंने पूछा:

“वह क्या, भाई साहब?”

पिछले विचार को जोड़ते हुए जीवछ भाई आगे बोले:

“किसान की उत्पादन-वृद्धि दुगुनी होगी, इसे समझने में मुझसे भी कुछ चूक हुई। इसलिए साल में वृद्धि नहीं हुई, जीवन ही पानी में डूब गया।”

'जीवन डूबना' सुनते ही जैसे मन में मंथन के आकाश से विचार का ठनका गिरा, वैसे ही मन चोट खा गया। चोट खाए मन से मैंने कहा:

"वह क्या, कैसे, भाई साहब?"

जैसे किसी का दुख सुनकर कोई दुख-हँसी हँसता है और कोई सुख-हँसी, वैसे ही दुख-हँसी की मुस्कान देते हुए जीवछ भाई बोले:

"भाई रमेश, आपसे छिपाना क्या। जिस दिशा में कदम उठाना था, उस दिशा में कदम न उठाकर दूसरी दिशा में उठ गया!"

मन में पहले वाले ठनके की तरह जैसे फिर दुबारा चोट पड़ी। कारण यह कि दिशा भूलने पर आदमी दिशांतरित हो ही जाता है।

मैंने पूछा:

"वह क्या, भाई साहब?"

जीवछ भाई बोले:

"अब तक खेती का काम, यानी मिट्टी का काम करता आया हूँ। पानी की जानकारी नहीं है, मतलब मछली पालने की। धोखा यह हुआ कि अपनी खेती को उन्नति की दिशा में नहीं बढ़ाकर पानी के फेर में पड़ गया।"

मेरे मन में भी था कि लोग इतने मछली-भोज करने लगे हैं कि इसका बाजार हमेशा कड़क रहेगा। इसलिए जिज्ञासा जगी हुई थी। मैंने पूछा:

"वह क्या, भाई साहब?"

जीवछ भाई बोले:

"मछुआरों से मछली पालने का विचार किया। गाँव में ही मछुआरा सोसाइटी वालों से एक बीघे का एक पोखर बंदोबस्त ले लिया।"

बीच में मैं बोल पड़ा:

“बुढ़ापे में भी ऐसा ताप तो आप जैसे तगड़े आदमी को ही हो सकता है! फिर क्या हुआ?”

जीवछ भाई ने लंबी साँस छोड़ते हुए कहा:

“साल भर की जो कमाई-खटाई थी, वह लगाकर पोखर की बंदोबस्ती का रुपया माथे पर लाद लिया!”

काम में कहीं गड़बड़ न देखकर मैंने कहा:

“कितनी अच्छी बात कही आपने। इसमें क्या हुआ?”

जीवछ भाई बोले:

“ऐसी पहले ही बारिश हुई कि बरसाती पोखर का मुँह-कान बनाना पीछे पड़ा रह गया। सारी मछलियाँ बह गईं।”

❑❑❑
❑❑
❑

Notes